# शैक्षिक मंथन

( द्विभाषी मासिक )

*शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका*

वर्ष : 10 अंक : 3    1 अक्टूबर, 2017

( आश्विन-कार्तिक, विक्रम संवत् 2074 )



संस्थापक  
स्व. मुकुन्द राव कुलकर्णी

संरक्षक  
के.नरहरि

❖

परामर्श  
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल  
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक  
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक  
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल  
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय  
डॉ. नाथू लाल सुमन  
डॉ. एस.पी. सिंह  
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक  
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक  
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी  
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय  
कार्यालय प्रभारी  
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467



प्रकाशकीय कार्यालय  
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,  
जयपुर ( राज. ) 302001  
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :  
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,  
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053  
दूरभाष : 011-22914799

**E-mail :**  
shaikshikmanthan@gmail.com  
**Visit us at :**  
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/-    वार्षिक शुल्क 200/-  
आजीवन ( दस वर्ष ) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर



शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।


## शिक्षा में भारतीयता ❑ डॉ. रेखा यादव

**शिक्षा अपने साधारण और असाधारण दोनों अर्थों में समाजोपयोगी होने की आशा रखती है परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने के बाद समाजोपयोगी का स्थान स्वयं की सुरक्षा एवं समृद्धि ने ले लिया। यह सही है कि अंग्रेजों को अपना कार्य निकलवाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा का जानकार वर्ग चाहिए था परन्तु इस जानकार वर्ग द्वारा सरकारी नौकरियों को आजीविका और जनसामान्य पर रौब हेतु स्वीकारा गया और अंग्रेजों के चले जाने के बाद आज भी शिक्षा मात्र नौकरी एवं रौब पाने का ही जरिया मानी जा रही है। सामाजिक असन्तोष का एक बड़ा कारण वर्तमान शिक्षा भी है।**

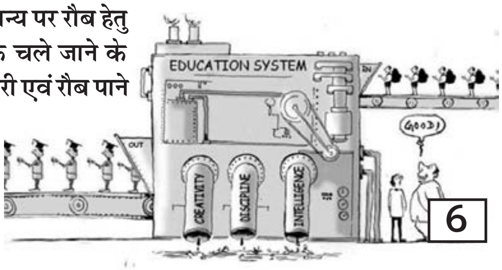


6

## अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| 4. | कैसी हो राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था | - सन्तोष पाण्डेय |
| 9. | राष्ट्रीय शिक्षा नीति : स्वरूप और संकल्पना | - डॉ. बुद्धमति यादव |
| 11. | भारतीयता के अनुरूप शिक्षा | - डॉ. रेखा भट्ट |
| 13. | राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप | - डॉ. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल |
| 16. | भारतीय शिक्षा व्यवस्था : चुनौतियाँ और समाधान | - डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल |
| 19. | Towards Bharatiya Education Tomorrow | - Dr. TS Girishkumar |
| 25. | उच्च शिक्षा में वित्त व्यवस्था | - प्रो. मधुर मोहन रंगा |
| 28. | शिक्षित भारत में हो अवसर की समानता | - डॉ. ऋतु सारस्वत |
| 30. | भारतीय शिक्षा और राष्ट्रवाद | - डॉ. संजीव कुमार |
| 32. | बालकों के अधिगम में अभिप्रेरणा की भूमिका | - डॉ. कृष्णा आचार्य |
| 35. | चलन ने बदल दिए शब्द और अर्थ | - देवर्षि कलानाथ शास्त्री |
| 37. | फाईबर ऑप्टिक्स अनुसंधानी नरेन्द्रसिंह कपानी | - विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी |
| 39. | विद्या ददाति विनयम् | |
| 41. | गतिविधि | |


## विज्ञान व स्वदेशाभिमान

**❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

आत्मगौरव व संस्कृति व्यक्ति में जीने की ललक जगाती है। व्यक्ति को उत्साह से जीने का कारण देती है। भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का देश के विज्ञान अनुसंधान पर भी बहुत प्रभाव पड़ा था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय भारत में विश्वस्तर के जितने वैज्ञानिक अनुसंधान हुए उतने स्वतन्त्रता के बाद देखने को नहीं मिले। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल प्रान्त ने किया था। विज्ञान के क्षेत्र में भी वंगाल ने ही राह दिखाई थी। आधुनिक विज्ञान ने उसे रूढ़ि कहकर वनों को नाश करने में भूमिका निभाई है। प्रकृति संरक्षण में आत्मा सो परमात्मा, कण कण में भगवान जैसी भारतीय सोच को पर्यावरण-विज्ञान मान चुका है, मगर बहुत देर के बाद। दु:ख की बात यह है कि भौतिकता का तथाकथित सुख पैसों वालों ने उठाया मगर बुरे परिणामों की मार निर्धन लोग झेल रहे हैं। भौतिक विकास के कारण हुए अतिमशीनीकरण ने आर्थिक विषमता को बहुत बढ़ा दिया है।

22

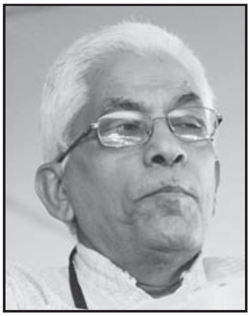

**श्रेष्ठ मानव निर्मात्री शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर बल दिया जाता है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति के मन और तन की पवित्रता पर बल देने के साथ-साथ सद्भावनापूर्ण जीवन का आधार प्रदान करती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य के चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल देते हुये, व्यक्ति में श्रेष्ठ संस्कार, शाश्वत जीवन मूल्यों, नैतिक व धार्मिक मूल्यों को व्यक्तित्व में समाहित करने का कार्य करती है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में राष्ट्र व समाज के प्रति सम्मान के साथ-साथ वैयक्तिक आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, आत्मरक्षण, आत्मनिर्माण का समावेश कर उसे उचित एवं समयानुकूल व परिस्थितियों के अनुकूल, नैतिक रूप से उचित, न्याय व धर्म संगत निर्णय लेने योग्य बनाती है।**

# कैसी हो राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था

**❑ सन्तोष पाण्डेय**

**संपादकीय**

आज देश की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था निर्मित करने की है। लगभग दो शताब्दियों से प्रचलित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने एक ऐसे समाज की रचना कर दी है जिसमें बहुसंख्यक शिक्षित व्यक्ति कागजी डिग्रीधारी तो है, परन्तु किसी भी उत्पादन कौशल में दीक्षित व प्रशिक्षित नहीं है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से निकले व्यक्ति जीवन के उद्देश्य व कौशल से विहीन है। आर्थिक सुरक्षा के नाम पर रोजगार के लिये मात्र नौकरी वह भी सरकारी पर आश्रित हैं। इसी आधार पर जनसाधारण भी नौकरी को ही रोजगार के मिथक रूप में जानता है।

यह शिक्षा व्यवस्था श्रेष्ठ उद्यमी, रोजगार सृजनकर्ता तथा कल्पना और महत्त्वाकाँक्षा को साकार करने वाले व्यक्ति / उद्यमी निर्माण नहीं करती। परिणाम स्वाभाविक ही है, शिक्षा व्यवस्था अपवाद स्वरूप ही श्रेष्ठ वैज्ञानिक, उद्यमी, प्रोफेशनल्स, सामाजिक व नैतिक नेतृत्व के गुणों से युक्त व्यक्ति समाज को दे पाती है। यह शिक्षा व्यवस्था पश्चिम के भौतिकवादी, प्रकृति को मानव की चेरी समझने वाली संस्कृति पर आधारित है, तर्क आधारित वैज्ञानिक दृष्टिकोण भौतिक प्रगति पर आधारित है। जिसमें सामाजिक दायित्वों के स्थान के बजाय वैयक्तिक उत्थान पर अधिक ध्यान केन्द्रित होता है। सामाजिक आदर्श, कर्तव्य भाव, नैतिक व चारित्रिक गुणों को प्रेरित करने वाले तत्वों की भूमिका ही सहायक रहती है। परन्तु स्वस्थ वैयक्तिक प्रगति व उपलब्धियाँ समाज में रचनात्मक प्रवृत्तियों को बल प्रदान करती है। इस व्यवस्था ने भारतीय मानस व सामाजिक संरचना को गहन रूप से प्रभावित किया है परन्तु यह ही भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को भारतीयता के अनुकूल बनाने में अवरोध बन रही है।

भारत की संस्कृति सहस्त्रों वर्ष पुरानी है। यह भौतिकता से परे श्रेष्ठ मानवीय नैतिक, सामाजिक, धार्मिक मूल्यों से युक्त श्रेष्ठ मानव जीवन की कल्पना पर आधारित है। यह मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म व पुरुषार्थ के लिये प्रेरित करती है। सामुदायिकता की भावना से समाज संगठन संचालित होता है, जिसमें व्यक्ति के स्थान पर घर, परिवार, समाज व राष्ट्र के हितों को व्यक्तिगत हितों पर वरीयता दी जाती है। प्रकृति व अध्यात्म यहाँ कण-कण में व्याप्त हैं। अविधा (भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति व उपभोगों पर विद्या आध्यात्मिक सुख) को प्राथमिकता देते हुये दोनों में सामंजस्य की सुन्दर व्यवस्था की गई है। इस रचना में शिक्षा व्यवस्था की संरचना इस प्रकार से की गई कि मनुष्य एक श्रेष्ठ मानव बन सके। श्रेष्ठ मानव का निर्माण करने वाली शिक्षा व्यवस्था ही राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का आधार हो सकती है। श्रेष्ठ मानव निर्मात्री शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर बल दिया जाता है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति के मन और तन की पवित्रता पर बल देने के साथ-साथ सद्भावनापूर्ण जीवन का आधार प्रदान करती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य के चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल देते हुये, व्यक्ति में श्रेष्ठ संस्कार, शाश्वत जीवन मूल्यों, नैतिक व धार्मिक मूल्यों को व्यक्तित्व में समाहित करने का कार्य करती है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में राष्ट्र व समाज के प्रति सम्मान के साथ-साथ वैयक्तिक आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, आत्मरक्षण, आत्मनिर्माण का समावेश कर उसे उचित एवं समयानुकूल व परिस्थितियों के अनुकूल, नैतिक रूप से उचित, न्याय व धर्म संगत निर्णय लेने योग्य बनाती है। इन गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति समाज की संस्कृति का वाहक बनता है तथा सामाजिक विकास का संरक्षक बनता है, जिससे सामाजिक विकास को बल मिलता है। श्रेष्ठ मानव का निर्माण करने वाली राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था तब तक अधूरी रहेगी जब तक कि मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक कौशल

में उसे प्रशिक्षित नहीं किया जाय। समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुशल कारीगर, किसान, कृषि विशेषज्ञ, उद्यमी, व्यवसाय संचालक, नव आर्थिक प्रवर्तक, विभिन्न व्यवसायों के संचालन हेतु आवश्यक हैं। इन सभी की पूर्ति करने में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था समर्थ होनी चाहिये। परिवर्तनशील संसार में नये-नये मार्ग खोजने वाले वैज्ञानिक, समाज निर्माता को आगे बढ़ाना भी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का आवश्यक अवयव होना है। इस कसौटी से भारत में सहस्राब्दियों से प्रचलित शिक्षा व्यवस्था आज की परिस्थितियों में भी श्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था बन सकती है। आवश्यकता है कि आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप उसका अनुकूलन किया जाय।

देश में वर्तमान प्रचलित शिक्षा व्यवस्था एक श्रेष्ठ मानव निर्माण की आवश्यकता को पूरा करने में समर्थ नहीं है। यह भारतीय मानस व संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। इसमें स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि अरविन्द की संकल्पनाओं में मूर्त रूप देने की क्षमता नहीं है। यह भारतीय संस्कृति व जनमानस से असम्बद्ध है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सभी की आकाँक्षा थी कि भारतीयता की सुगंध से परिपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को आगे बढ़ाया जायेगा। परन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में देश ऐसे हाथों में रहा जो तन और मन से तो भारतीय थे, परन्तु अपनी पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के कारण पश्चिमी दृष्टिकोण व मूल्यों के पोषक थे। उस समय विश्वभर में प्रचलित समाज के आदर्शों से भी भ्रमित थे। परिणामस्वरूप देश की शिक्षा व्यवस्था में भारी परिवर्तन हुये। शिक्षा का व्यापक प्रचार व प्रसार भी हुआ। समय-समय पर अनेक शिक्षा आयोग बने, विशेषज्ञ दल बने, राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ बनीं जिनकी अनुशंषाओं पर व्यापक परिवर्तन भी किये गये। परन्तु इनमें भारत का वास्तविक इतिहास, राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीय आत्मसम्मान का भाव, कर्तव्य निष्ठा, नैतिक गुणों का विकास व भारतीय संस्कृति विस्मृत हो गई। यद्यपि शिक्षा नीतियों, पाठयक्रमों इत्यादि में इन्हें राष्ट्रीय आदर्श के रूप में सम्मिलित तो किया गया, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर इनका प्रभावी, शिक्षण नहीं हो सका। इन्हीं व्याधियों के कारण आज भारत की शिक्षा व्यवस्था देश की आवश्यकताओं को हल करने में असफल है। विश्व भर में आज अपनी जड़ों की ओर लौटने की प्रवृत्ति दिख रही है। विश्ववाद के बावजूद सभी देश राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय गौरव, वहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रति जागरूक हो रहे हैं और वैसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की रचना हेतु प्रयत्नशील हैं। इन परिस्थितियों में भारत को भी एक उपयुक्त व आदर्श राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था विकसित करने की महत्ती आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में पहली बार ऐसी शासन व्यवस्था आई है, जो गत 70 वर्षों के दुराग्रहों से युक्त है। नई शासन व्यवस्था ने एक नई सोच व नये दृष्टिकोण का संचार किया है। सबका साथ सबका विकास आज की सोच का आदर्श है। ऐसे में शिक्षा व्यवस्था कैसे अप्रभावित रह सकती है। शिक्षा में चुने हुये आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व अवसरों का सर्वाधिक लाभान्वित होने वाले वर्ग को श्रेष्ठ शिक्षा का लाभ मिल रहा है, परन्तु योग्य व प्रतिभा सम्पन्न युवाओं को इनसे लाभान्वित नहीं हो पाने के कारण शिक्षा में 'चयनित को लाभ व चयनित का विकास' दिखायी दे रहा है। इस समस्त विकृति को दूर करने में श्रेष्ठ मानव का निर्माण करने वाली राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था ही कारगर हो सकती है।

श्रेष्ठ मानव निर्माण करने हेतु भारत की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक रूप से अग्रवर्णित बातें अवश्य शामिल की जानी चाहिये- भारत की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में राष्ट्र का सर्वोपरि स्थान होना चाहिये, राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र गौरव, राष्ट्र सम्मान व राष्ट्र के प्रति अटूट निष्ठा प्रत्येक नागरिक में कूट-कूट कर भरी जानी चाहिये, राष्ट्र की भौगोलिक सीमा एक सांस्कृतिक क्षेत्र में निहित होने के कारण शिक्षा व्यवस्था छात्रों को संस्कृति का वाहक बनाने व पुष्ट करने वाली होनी चाहिये, संस्कृति जीवन के शाश्वत मूल्यों, नैतिक आधारों, आदर्श व्यवहार, कर्तव्यनिष्ठा इत्यादि से बनती है। एतदर्थ शिक्षा व्यक्ति में सांस्कृतिक विशेषताओं को समाहित करने वाली होनी चाहिये। भाषा संस्कृति की वाहक है। मातृभाषा के माध्यम से ही सांस्कृतिक गुणों का संचरण व्यक्तियों में किये जाने के कारण यह शिक्षा व्यवस्था का अभिन्न अंग बन जाती है। शिक्षा व्यवस्था का संचालन मातृभाषा में ही संभव है। सांस्कृतिक रूप से दीक्षित व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अधिक सुखमय व आनन्ददायक जीवन निर्माण की दृष्टि से कौशल विकास, नवोन्मेष, सृजनकारी प्रवृत्तियों व व्यवहारों से प्रेरित करने वाले अवयव ही शिक्षा के भाग होने चाहिये एवं उन्हें आगे बढ़ाने व विकसित करने वाली गतिविधियाँ इसका अभिन्न अंग होनी चाहिये। स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन बनता है। इस दृष्टि से शारीरिक शिक्षा, योग व खेलकूद की गतिविधियाँ तथा स्वस्थ मनोरंजन व बौद्धिक विकास से संबंधित गतिविधियाँ को भी राष्ट्रीय शैक्षिक व्यवस्था में स्थान मिलना चाहिये। समाज व आर्थिक जरूरतों को पूरा करने वाली ज्ञान व्यवस्था भी राष्ट्रीय शिक्षा का अंग होना चाहिये। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था देश व समाज के हित संवर्धन की दृष्टि से संचालित होनी चाहिये। यह जनसेवा, राष्ट्र सेवा का सर्वोत्तम स्वरूप है। इसका संचालन आर्थिक लाभ की दृष्टि से कदापि नहीं होना चाहिये। इसके संचालन का दायित्व स्वयं राज्य (अर्थात देश) को करना चाहिये। इन गुणों से परिपूर्ण शिक्षा व्यवस्था ही एक भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था बन सकती है। ❑

# शिक्षा में भारतीयता

❑ डॉ. रेखा यादव

भारत में शिक्षा को जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकारा गया है। शिक्षा को आभूषण, विनयशील स्वभाव का परिचायक भी माना गया है और शिक्षित जीवन को अत्यधिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा से देखा जाता रहा है। वेदांग में शिक्षा का सम्बन्ध सही मन्त्रोच्चारण से है। शिक्षा, ज्ञान की उपलब्धि करवाती है और शिक्षा का अनिवार्य सम्बन्ध स्वानुभव से रहा है। शिक्षा के विविध स्तर रहे है। व्यावहारिक शिक्षा जीवन जीने की कुशलता से सम्बन्धित थी जो विभिन्न प्रकार के कौशल के रूप में समाज में व्याप्त थी। शुद्ध सैद्धान्तिक शिक्षा कठोर अनुशासन का पालन कर अभ्यास एवं वैराग्य की निरन्तरता से अनुभव रूप में जानी जाती थी। इस प्रकार के तत्त्वज्ञानियों का समाज में विशेष सम्मान था इन्हें एवं इन के द्वारा रचित ग्रन्थों को आदर व आश्चर्यमिश्रित श्रद्धा से देखा जाता था। शिक्षक या आचार्य होने की अपेक्षा इसी वर्ग से की जाती थी। धीरे-धीरे इस वर्ग में अभ्यास एवं वैराग्य का स्थान कम होता गया और वंशवाद, जातिवाद, सत्ता एवं जीवन सुरक्षा के साधन जुटाने की प्रवृत्ति बढ़ी जिसके कारण इस वर्ग का सम्मान कम होने लगा और आज भारत में वर्गीय संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। बहुधा भारत में वर्गीय संघर्ष का कारण पाश्चात्य विचारों के प्रभाव एवं प्रयासों को स्वीकारा जाता है साक्ष्य भी दिये जाते हैं परन्तु परम्परा में आये दोष के सम्बन्ध में आँख मूंद ली जाती है। इस पर प्रश्न करना विजातीय या अधर्मी होना मान लिया जाता है।

भारत में राष्ट्रीय शिक्षा पर सर्वसम्मति नहीं बन पाने का कारण जितना भारतीयता के प्रति पश्चिमी दुराग्रह का है उतना ही हम भारतीयों का भी है। बहुत लम्बे समय की दासता के बाद प्रथमत: तो हम इतने भयग्रस्त हो गए हैं कि हमें लगता है जो बचा है चाहे विकृत रूप में क्यों न हो इसका महिमा मंडन कर परम्परा को जीवित रखा जाय और दूसरी ओर दुराग्रही, विध्वंसक प्रवृति है जिसे किसी भी रूप में भारतीयता को जीवित नहीं होने देना क्योंकि उसकी जीवनयापन की सुरक्षा एवं सुख प्राप्ति इसी पर निर्भर है। विरोध के लिए विरोध करना अथवा विरोध का कोई भी स्वर न सुनना दोनों ही भारतीय मन का स्वभाव नहीं है। इन दोनों दृष्टियों से संचालित मन भी तदर्थवादी और असुरक्षित है इसलिये ये शिक्षा व्यवस्था का प्रारूप निर्धारित करने में अक्षम प्रवृत्तियाँ है यह हमें स्वीकार कर लेना चाहिए।

शिक्षा अपने साधारण और असाधारण दोनों अर्थों में समाजोपयोगी होने की आशा रखती है परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने के बाद समाजोपयोगी का स्थान स्वयं की सुरक्षा एवं समृद्धि ने ले लिया। यह सही है कि अंग्रेजों को अपना कार्य निकलवाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा का जानकार वर्ग चाहिए था परन्तु इस जानकार वर्ग

**शिक्षा अपने साधारण और असाधारण दोनों अर्थों में समाजोपयोगी होने की आशा रखती है परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने के बाद समाजोपयोगी का स्थान स्वयं की सुरक्षा एवं समृद्धि ने ले लिया। यह सही है कि अंग्रेजों को अपना कार्य निकलवाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा का जानकार वर्ग चाहिए था परन्तु इस जानकार वर्ग द्वारा सरकारी नौकरियों को आजीविका और जनसामान्य पर रौब हेतु स्वीकारा गया और अंग्रेजों के चले जाने के बाद आज भी शिक्षा मात्र नौकरी एवं रौब पाने का ही जरिया मानी जा रही है। सामाजिक असन्तोष का एक बड़ा कारण वर्तमान शिक्षा भी है। दिलचस्प बात है कि शिक्षित वर्ग जो पश्चिम की बौद्धिकता, वैचारिक स्वतन्त्रता, विज्ञान के इहलौकिक मूल्यों और धर्मनिरपेक्षता से प्रभावित है वह इसका समाधान भारतीय मन को जाने बिना ही दयाभाव से कर रहा है। इनका दयाभाव भारतीय मन को और दीन एवं पिछलग्गू मात्र बना रहा है।**

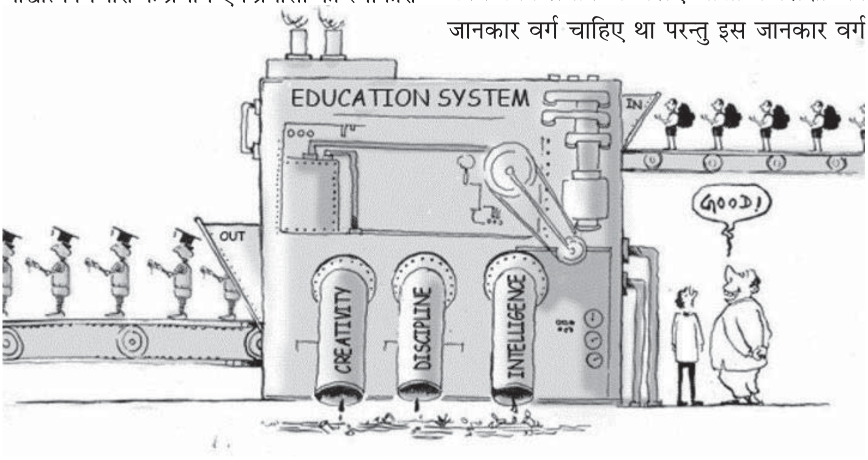

द्वारा सरकारी नौकरियों को आजीविका और जनसामान्य पर रौब हेतु स्वीकारा गया और अंग्रेजों के चले जाने के बाद आज भी शिक्षा मात्र नौकरी एवं रौब पाने का ही जरिया मानी जा रही है। सामाजिक असन्तोष का एक बड़ा कारण वर्तमान शिक्षा भी है। दिलचस्प बात है कि शिक्षित वर्ग जो पश्चिम की बौद्धिकता, वैचारिक स्वतन्त्रता, विज्ञान के इहलौकिक मूल्यों और धर्मनिरपेक्षता से प्रभावित है वह इसका समाधान भारतीय मन को जाने बिना ही दयाभाव से कर रहा है। इनका दयाभाव भारतीय मन को और दीन एवं पिछलग्गू मात्र बना रहा है। पेट की भूख मिटने पर जो आत्मसन्तुष्टि का भारतीय मन था वह आज खो गया है। आज शिक्षा और शिक्षित जन अपने विचार एवं आचरण से वर्ग संघर्ष को बढ़ा रहे हैं, इसे हमें समझना होगा और वर्ग संघर्ष तब तक नहीं रुकेगा जब तक भारत का आधुनिक प्रगतिशील वर्ग न्यूनतम आवश्यकताओं में जीवनयापन का स्वयं संकल्प ना ले लें। आज जिस रूप में विद्यालयों को ग्रेडिंग दी जा रही है वहाँ संसाधनों की मान्यता, तकनीक पर व्यक्तिगत सुविधाओं के लिए निर्भरता, स्मार्टनेस (चतुराई एवं वाक्पटुता), पश्चिम रंग-ढंग के अनुसार दैहिक सुख और आर्थिक समृद्धि पर आधारित विकास-सूचकता मापदण्ड है। इन मानकों में कुछ भी ऐसा नहीं है जो एक अच्छा नैतिक मनुष्य, प्रतिस्पर्द्धा एवं असन्तोष से मुक्त मानवीय मन अथवा समरस, समाज और प्रतिबद्ध कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक धर्म का निर्वहन करने वाले इन्सान सुलभ करा सकें।

शिक्षा में नवाचार का प्रयोग अधिकारियों एवं मन्त्रियों के विदेश भ्रमण के बिना अप्रभावी माना जाता है। पहले ही विदेशी शिक्षा, विदेशी भाषा और विदेशी संस्कारों से हम आतंकित है इस पर शासकीय मोहर लगाकर प्रयास भी आरम्भ कर दिये जाते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था के सामाजिक सरोकारों को हम जीवित करना चाहते हैं तो शिक्षा में भारतीय मन की समझ आवश्यक है। यह भारतीय मन क्या है? इसे समझने के लिए एक सुधी दृष्टि श्री धर्मपाल जी की पुस्तकों में उपलब्ध है। यह दृष्टि गाँधीवाद की वह दृष्टि है जो स्वराज्य की पूर्णता का आदर्श प्राप्त करना चाहती है। हमारे उतावलेपन ने इस दृष्टि को बैलगाड़ी की चाल माना परन्तु समरस समाज, स्वस्थ पर्यावरण और स्वाभिमानी समाज यदि हमें बनाना है तो भारतीय मनस की इस समझ को जानना होगा तथा बिना तर्क और परिणाम की उपलब्धता के इसे अस्वीकार करने का दुराग्रह छोड़ना होगा। धर्मपाल जी के शब्दों में ''अपने लोगों के चित एवं मानस समझने की बात हमें अच्छी नहीं लगती। गाँधीजी का भारत के साधारण जन के साथ एकाकार होकर उन्हीं के चित्त की बात को शब्द देते जाना भी हम भद्रजनों को कभी सुहाता नहीं था। भारतीय चित्त व मानस से हमें डर-सा लगता है। यह हम मानकर चलना चाहते हैं कि भारतीय मानस में कुछ है ही नहीं वह तो एक साफ स्लेट है, जिस पर हम भद्र लोगों को आधुनिकता से सीखकर नया आलेख लिखना है।''

श्री धर्मपाल जी ने अपनी रचनाओं में अंग्रेजों के आने से पहले भारत की शिक्षा व्यवस्था का चित्रण किया है। जिसे देखकर हमें आश्चर्य नहीं बल्कि विश्वास बढाना चाहिए कि हम क्या थे? गाँधीजी और सर फिलिप हार्टोग का पत्राचार स्पष्ट करता है कि भारत में साक्षरता का प्रतिशत मात्र विद्यालयी शिक्षा पर आधारित नहीं था। समाज जीवन में सामुदायिक शिक्षा, अनौपचारिक घरेलू शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान था और ऐसा सभी धर्मावलम्बियों में था परन्तु शिक्षा का किसी भी रूप में दुरुपयोग पेट की भूख शान्त करने अथवा वर्ग संघर्ष बढ़ाने के लिए नहीं था। साक्षरता का प्रतिशत अच्छा था अंग्रेजी शिक्षा से यह प्रतिशत घटा। भारतीय चित्त पर विचार करते हुए श्री धर्मपाल जी का यह कथन बिल्कुल उपयुक्त प्रतीत होता है बीसवीं, इक्कीसवीं सदी का जो सपना आधुनिक शिक्षा दिखा रही हैं, उसमें हमारे अस्मितागत प्रश्न ही नहीं है हम पश्चिम के भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के उपकरण भर बन रहे हैं। आज हम यान्त्रिक ढँग से अपने सजीव समाज को उपकरण भर बना रहे है इस पर विचार एवं समीक्षा आवश्यक है।

धर्मपाल जी भारतीय मानस को समझने के कुछ मार्ग सुझाते हैं जो विचारणीय है -

हमें उस भारतीय मन को जानना समझना होगा जो आज भी हमारे अनुसार पौराणिक युग में जी रहा है। कलियुग की धारणा को निष्पक्षता से विचारशीलता और भावनाओं की सच्चाई के प्रकाश में समझना होगा। भारतीय मन भारत को नृतृत्वशास्त्रीय सिद्धान्त से नहीं जान सकते नृतृत्वशास्त्रीय अध्ययन अन्यमन का होता है स्वयं का नहीं।

प्राचीन साहित्य वेद, उपनिषद् पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध जैन साहित्य, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, एवं धर्मशास्त्र का गम्भीर अध्ययन करना होगा और इसके लिए संस्कृत की अनिवार्यता के प्रश्न को छोड़ना होगा। ये वे ग्रन्थ हैं जिन्होंने हमारे समाज जीवन में प्रज्ञा एवं व्यवहार को नियमित किया है। इन्हें सभी को पढ़ना चाहिए। परन्तु यहाँ हमें ऐसा नही समझना चाहिए कि संस्कृत का महत्त्व नहीं है संस्कृत से अनुवाद तो उपयुक्त है परन्तु मूल पर मौलिक विचार प्रस्तुति के लिए तो संस्कृत अध्ययन की आवश्यकता बनी रहेगी।

भारतीय साहित्य का प्रकाशन मात्र पुण्य कमाने या भक्तिभाव बढ़ाने के लिए न हो इन सभी में भारतीयता की समझ प्रखर करने एवं वर्तमान में व्यावहारिक कार्य करने का भाव हो। हम अपनी स्वतन्त्र पहचान देखें, हर ज्ञान को पश्चिम का पूर्वाभास कहकर आत्मश्लाघा न करें।

हमारी परम्परा में चिन्तन और मनन की प्रभावी भूमिका रही है, इसके बिना विवेक

दृष्टि संभव नहीं है।

अहिंसा के सम्बन्ध में दृष्टि को स्पष्ट करते हुए उन्होंने जिक्र किया कि पुरुषोत्तम दास टंडन जूता बनाने वाले के हाथ से बने चमड़े का जूता पहनने के बजाय बाटा का रबड़ का जूता पहनते थे क्योंकि वे जीवहत्या के प्रति सजग थे। परन्तु गाँधीजी जीवहिंसा के विरोध की इस दृष्टि को अस्वीकार करते थे। गाँधीजी के लिए अहिंसा एक व्यापक जीवन दृष्टि का अंग था। जिसके अनुसार अपनी आवश्यकताओं को घटाते जाना और जो घटाई न जा सके, उसकी आवश्यकता स्थानीय उपलब्धता से करना अहिंसा है। पड़ौस के चर्मकार के व्यापार को छोड दूर दराज की कम्पनी का रबड़ का जूता गाँधीजी की जीवन दृष्टि का अंग नहीं है। अहिंसा और स्वदेशी उनके लिए एक है। यह मनन और चिन्तन आज शिक्षा में क्यों नहीं है। भावनाओं के अतिरेक में बहकर हम अपने पड़ौस में हिंसा कर देते हैं इसे भारतीय मन को समझना आवश्यक है।

शिक्षा आचरण और व्यवहार की कला है, जीविका चलाने की कला है तो फिर अक्षर ज्ञान को शिक्षा क्यों माना जा रहा है? और जो माना जा रहा है उस पर कोई प्रश्न क्यों नहीं पूछता? उनके अनुसार प्रश्न पूछना भी भारतीय परम्पराओं में सत्य साधना है। इनका महत्त्व सही जवाब ढूँढने से ज्यादा है। ये प्रश्न हमें हमारे विवेक को लौटाते हैं।

भारतीय मानस एवं चित्त का अध्ययन काल के क्रम में समझना जानना चाहिए। परा-अपरा का भेद, ऊँच-नीच का या श्रेय व हेय का भेद मौलिक रूप में नहीं है। अविद्या में रमना बुरा नहीं है बल्कि अविद्या से परे विद्या है यह जागृति हमारे यहाँ है इसे समझकर जीवन एवं समाज की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना चाहिए। उपर्युक्त सुझाव स्पष्ट करते हैं कि इस प्रकार का अध्ययन हमें शिक्षा व्यवस्था का प्रारूप दे सकता है जिसे आत्मसात करना वर्तमान शिक्षा की भांति विद्यार्थियों पर बोझ नहीं होगा और शिक्षा भारतीय जीवन का उत्सव एवं आनन्द बन पायेगी। ❑

(प्रभारी दर्शन शास्त्र विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर)

## दिल्ली अध्यापक परिषद् ( राजकीय निकाय ) की चिंतन बैठक

दिल्ली अध्यापक परिषद, राजकीय निकाय (सम्बद्ध अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) के तत्वावधान में एक दिवसीय चिंतन बैठक लुडलो कैसल नम्बर 4, शंकराचार्य मार्ग विद्यालय के सभागार में दिनांक 2 सितम्बर शनिवार को सम्पन्न हुई। कार्यक्रम का उद्घाटन दीप प्रज्वलन से हुआ। इस चिंतन बैठक में दिल्ली के सभी जिलों से 93 प्रमुख कार्यकर्ताओं की भागीदारी रही। प्रथम सत्र सदस्यता अभियान और चीनी सामान का बहिष्कार तथा विद्यालयों में वृक्षारोपण संबंधित रहा। इस सत्र का संचालन राजकीय निकाय महिला उपाध्यक्ष सुनीता यादव ने किया जबकि सत्र का विषय, राजकीय निकाय अध्यक्ष वेद प्रकाश जाखड़ ने रखा। इस सत्र में सदस्यता अभियान में आई कठिनाई के बिंदु तथा विभिन्न जिलों की सदस्यता संख्या पर चर्चा हुई तथा चीन से आयातित वस्तुओं का बहिष्कार करने और जन जागृति के लिए परिषद कार्यकर्ताओं की भूमिका पर चिंतन हुआ। इसके साथ ही पर्यावरण जैसे मुद्दे को हाथ में लेकर अध्यापक परिषद के कार्यकर्ता विद्यालयों में वृक्षारोपण करेंगे, इस दिशा में सहयोग की सहमति बनी।

द्वितीय सत्र का संचालन राजकीय निकाय उपाध्यक्ष आर. पी. चौरसिया ने किया तथा उद्बोधन श्री मोहन पुरोहित का रहा। इस सत्र का विषय 'छात्रों के अधिगम विकास में शिक्षकों की भूमिका' था।

श्रीमान पुरोहित ने विषय की गंभीरता को सहज रूप में रखने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि हम राष्ट्र हित, छात्र हित और शिक्षक हित में सोचने वाले हैं। राष्ट्र की आत्मा हमारी आत्मा है। इसलिए हम शिक्षक हित से पहले छात्र हित की बात करते हैं। इसिलए हम परिषद के कार्यकर्ता सदैव छात्रों में अधिगम विकास हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। छात्रों में न्यूनतम अधिगम स्तर को लेकर अ.भा.राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की शिमला बैठक में गंभीर चिंतन किया गया। दिल्ली में छात्रों के अधिगम का विकास परिषद के कार्यकर्ताओं के कंधों पर है। आज छात्रों का अधिगम न्यून है जिसके स्तर को बढ़ाना आवश्यक है। इस विषय मे अधिगम में कमी के प्रमुख कारणों को चिह्नित किया गया जो निम्न है-

अभिवावक और शिक्षक के बीच समन्वय का अभाव, शिक्षकों को गैर शैक्षिक कार्यों में लगाना, शिक्षक छात्र अनुपात की प्रतिकूलता, शिक्षा में ठेका प्रथा का चलन, शिक्षा में बजट की कमी, शिक्षा तंत्र में अभिभावक को अलग रखकर केवल शिक्षक की जिम्मेदारी तय होना, अतिथि अध्यापकों में हीन भावना रहना, किताबों की उपलब्धता सत्र प्रारम्भ के साथ नही होना, दिल्ली में बाहर से आए हुए छात्रों की संख्या काफी है जो अपने मूल प्रदेश में जाते हैं और कई महीने रुक जाते हैं।

तीसरे सत्र का संचालन राजकीय निकाय संगठन मंत्री अवधेश पाराशर ने किया तथा विषय, मंत्री ज्ञानेन्द्र मावी ने रखा। यह सत्र समस्या समाधान का था, जिसमे अध्यापकों ने अपनी अपनी समस्या रखी जिसका समाधान बताने का हर संभव प्रयास श्री मावी के द्वारा किया गया। कुछ समस्या अधिकारी स्तर की थी जिसका समाधान अधिकारियों से मिलकर कराने का आश्वासन मंच से मिला। सभी सहभागियों ने खुलकर अपनी समस्या बताई और समाधान से संतुष्ट भी हुए।

समापन सत्र महत्त्वपूर्ण रहा जिसमें अध्यापक परिषद के अध्यक्ष जयभगवान गोयल ने कहा कि सदस्यता संगठन की संजीवनी है। कार्यकर्ता को लोकसंग्रही बताते हुए गुणी व श्रेष्ठ अध्यापकों को साथ लाने का आह्वान किया। उनका मानना है कि कार्यकर्ता अपने कर्म, क्रिया तथा श्रेष्ठ व्यवहार से लोगों को जोड़ता है। यह पारिवारिक संगठन है। सबका सम्मान करते हुए कार्यकर्ता को प्रोत्साहित करना तथा उसे आगे लाने का प्रयत्न करना ताकि सभी की सहभागिता बन सके।

# राष्ट्रीय शिक्षा नीति : स्वरूप और संकल्पना

**प्रत्येक देश अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को प्रकट करने, बढ़ावा देने के लिए और चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। आज हमें भी शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता है। आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है – जो व्यक्ति को संवेदनशील बनाए, जिसके लिए राष्ट्रहित ही सर्वोपरि हो तथा व्यक्ति का शरीर ही नहीं, उसकी आत्मा भी राष्ट्रीय भाव से परिपूर्ण हो, भारतीय होने पर जिसे गौरव का अनुभव हो। ये सब तभी सम्भव है, जब हम शिक्षा को 'राष्ट्रीयता' से जोड़ेंगे। ऐसी समग्र, सर्वव्यापी, सर्वग्राह्य शिक्षा नीति ही राष्ट्र के उत्थान में सहायक, समाज की बौद्धिक क्षमता व संकल्प शक्ति को प्रेरित करने वाली हो सकती है।**

❑ **डॉ. बुद्धमति यादव**

वर्तमान शिक्षा का आकलन करने पर ज्ञात होता है कि आज का विद्यार्थी, विद्यार्थी न होकर मात्र परीक्षार्थी बनकर रह गया है। परीक्षा देकर डिग्री ले लेना ही उसकी शिक्षा का ध्येय बन गया है। ऐसी स्थिति में बालक के चरित्र निर्माण की, राष्ट्र निर्माण की बात हमें सोचने को विवश करती है कि क्या शिक्षा मानव निर्माण के उद्देश्य में सफल हो पा रही है? वर्तमान शिक्षा द्वारा अच्छा डॉक्टर, अच्छा इंजीनियर बनाना तो सम्भव है, परंतु अच्छा इंसान बनाना असम्भव है। वर्तमान शिक्षा अपने लक्ष्य से दूर होती नजर आती है।

आजादी से पूर्व अंग्रेजों का विचार था कि शिक्षा द्वारा हमें ऐसे लोग तैयार करने चाहिए, जो शरीर से तो भारतीय हो, परन्तु उनकी आत्मा अंग्रेजीयत से सराबोर हो। काफी हद तक अंग्रेज इस उद्देश्य में सफल भी रहे। विड़म्बना यह है कि हमें आजाद हुए 70 वर्ष हो गए, पर मानसिक रूप से हम आज भी ब्रिटिशकालीन मानसिकता में जकड़े हुए हैं। हिन्दी भाषा बोलने में, भारतीय परिवेश के अनुरूप व्यवहार करने में हम कहीं न कहीं हिचकिचाते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीयता की बात करना बेमानी लगता है।

मैकालयी शिक्षा ने हमारा जितना अनर्थ, अनिष्ट करना था, कर चुकी। अब हमें जाग्रत होने की आवश्यकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने वर्तमान शिक्षा से व्यथित होकर कहा था कि 'वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है जो संवेदनशून्य और निष्क्रिय बना दे। वह क्या है – मैं नहीं जानता। कदाचित कोल्हू हो जो शिक्षित के दिमाग और हृदय को पेर कर रसशून्य और संवेदनशून्य तथा खाली बना दे।' हमें ऐसी शिक्षा से उबरने की आवश्यकता है। प्रत्येक देश अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को प्रकट करने, बढ़ावा देने के लिए और चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। आज हमें भी शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता है। आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है – जो व्यक्ति को संवेदनशील बनाए, जिसके लिए राष्ट्रहित ही सर्वोपरि हो तथा व्यक्ति का शरीर ही नहीं, उसकी आत्मा भी राष्ट्रीय भाव से परिपूर्ण हो, भारतीय होने पर जिसे गौरव का अनुभव हो। ये सब तभी सम्भव है, जब हम शिक्षा को 'राष्ट्रीयता' से जोड़ेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा से तात्पर्य है कि बिना किसी जात-पाँत, स्थान या लिंग भेद के हर छात्र के लिए एक निश्चित स्तर तक तुलनीय कोटि की शिक्षा को पहुँचाना है। शिक्षा व्यक्ति को सुसंस्कृत और संवेदनशील बनाती है। वैज्ञानिक समझ बढाती है, राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाने में सहायक होती है। कुल मिलाकर लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा को लागू करने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि कोई जादुई डंडा हिलाया और इच्छा की पूर्ति हो गई। इसके प्रभावशाली उपयोग हेतु जरूरत है इच्छाशक्ति की, समर्पित कार्य की और बलिदान की। यह कार्य किसी एक व्यक्ति से सम्भव नहीं है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक नारा दिया है 'सबका साथ, सबका विकास।' अर्थात् सबका सम्मिलित प्रयास ही शिक्षा को उत्तरोतर शिखर पर पहुँचा सकता है। शिक्षा एक ऐसा ही यज्ञ है, जिसको सम्पन्न कराने हेतु शिक्षा से जुड़ी प्रत्येक कड़ी को अपने हिस्से की आहुति देनी होगी, तभी यह यज्ञ सम्पूर्णता और सफलता से सम्पन्न हो सकेगा।

परिवर्तन जीवन का अनिवार्य अंग है। बात जब शिक्षा में परिवर्तन की आती है तो हमें समाज के मन को परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार करना होगा। सरकारी स्तर पर परिवर्तन कर भी दिया जाएगा किन्तु यदि समाज उस परिवर्तन हेतु तत्पर नहीं होगा, तो केवल कानून के बदल देने से व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होगा।

शिक्षा का उद्देश्य बालक के मन में जानकारियों को भर देना मात्र ही शिक्षा नहीं है। उसके मन को संस्कारित और योग्य बनाना भी आवश्यक है। आरोपित विद्या शिक्षार्थी को बहुज्ञ तो बना सकती है, किन्तु उसे प्रबुद्ध तथा समुन्नत नहीं बना सकती। सच्ची शिक्षा मनुष्य को जीवन संग्राम में समर्थ बनाकर साहसी, जुझारू और स्वावलम्बी बनाती है, परन्तु वर्तमान शिक्षा शिक्षार्थी को शिक्षित बरोजगारों की लम्बी पंक्ति में खड़ी कर युवा (शक्ति) ऊर्जा का अपव्यय ही करती है। अत: राष्ट्रीय शिक्षा में रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रम, कौशल विकास के प्रयासों को भी प्रमुखता देनी होगी। जब युवा की रोजी-रोटी की समस्या का निवारण होगा, तब व्यक्ति राष्ट्रहित में अपना योगदान दे सकेगा।

शिक्षा सामाजिक, आर्थिक प्रगति और बदलाव का मुख्य साधन है। यह भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रमुख अस्त्र है। भारत की शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो राष्ट्रीय गौरव को प्रेरित करती हो, जो सांस्कृतिक विरासत और भारतीय जीवन मूल्यों को भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित करने वाली होने के साथ वैश्विक भौतिक विकास की गति के साथ कदमताल करने वाली हो, जिसमें ज्ञान, जीवन मूल्यों तथा दक्षता के बीच समन्वय की क्षमता हो। ऐसी समग्र, सर्वव्यापी, सर्वग्राह्य शिक्षा नीति ही राष्ट्र के उत्थान में सहायक, समाज की बौद्धिक क्षमता व संकल्प शक्ति को प्रेरित करने वाली हो सकती है। ऐसी शिक्षा नीति द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्यीय लक्ष्यों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन हो सकता है और शिक्षा में गुणवत्ता लायी जा सकती है।

आदर्श शिक्षा व्यक्ति को 'साक्षर' बनाती है और दोषपूर्ण शिक्षा व्यक्ति को 'राक्षस' बनाती है। हमें शिक्षा द्वारा व्यक्ति को साक्षर एवं संस्कारवान बनाना है, राक्षस नहीं, ताकि अपना समाज दुनिया के लिए एक आदर्श समाज बने। एक फ्रेंच विद्वान के अनुसार - सारी दुनिया में जो विनाशलीला चलेगी, उसे टालने का एक ही उपाय है - नैतिक सरोकारों के प्रति जागरुकता चाहिए, आध्यात्मिकता चाहिए और नीतिपूर्ण जीवन चाहिए और ये तीनों एक साथ देखने हो तो भारत के पास ही मिलेंगे। इसलिए सारी दुनिया को भारत से शिक्षा लेनी चाहिए।

अंतत: आज की शिक्षा में परिवर्तन को लेकर चिन्तन करना होगा, चिन्तन को व्यावहारिक प्रयोगों में उतारना होगा, प्रयोगों से परिपक्व तथ्य का सार्वजनिक उपयोग कर लोकमत बनाना पड़ेगा। हमारी शिक्षा में व्यक्ति निर्माण, समाज सुधार, राष्ट्रहित का समावेश करने का लक्ष्य होना चाहिए, वही राष्ट्रीय शिक्षा कहलाएगी। अंत में स्वामी विवेकानन्द जी के इस प्रेरक उद्‌बोधन को अपनाना होगा - 'उठो, जागो और मत रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो।' ❑

(व्याख्याता-हिन्दी, जी.डी. कॉलेज, अलवर)

# भारतीयता के अनुरूप शिक्षा

**भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आधुनिक तकनीक के साथ भारतीयता की आत्मा और संस्कृति के अनुरूप शिक्षण की अनुकूल परिस्थितियों की स्थापना और विकास किया जायेगा तभी सन् 2027 में जब भारत विश्व का सबसे अधिक युवा आबादी वाला प्रथम देश होगा तब देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में युवा शक्ति का शत-प्रतिशत योगदान प्राप्त हो सकेगा। भारत अपनी ज्ञान आधारित मूल शिक्षा के आधार पर विश्व मानवता को नई दिशा देने में सक्षम होगा। वैश्विक परिदृश्य में आज भारत आर्थिक विकास की ओर तेजी से बढ़ता नजर आता है, किन्तु इसमें शिक्षा का योगदान, व्यवस्था के क्रियान्वयन एवं गतिशीलता की कमियों के कारण न्यूनतम बना हुआ है।**

❑ डॉ. रेखा भट्ट

आज भारत को विश्व की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा व्यवस्था के रूप में पुन: स्थापित करने के लिये आधुनिक तकनीकी, विज्ञान और जीवन के सत्य को उजागर करने तथा मानवीय जीवन मूल्यों का बोध कराने वाली शिक्षा व्यवस्था निर्मित करने की आवश्यकता है। भारत में 300 वर्षों से गहरी जड़ें जमा चुकी ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था से मुक्त होकर नयी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण हमारे समक्ष एक चुनौती है।

ब्रिटिश कार्यालयों में भारतीय नौकरशाह तैयार करने तथा कल कारखानों में काम करने के लिये भारतीय मजदूर प्राप्त हो सके इसके लिए मैकाले ने जो शिक्षा व्यवस्था भारत को दी, उसका अनुकरण करते हुए, भारत के अपार मानव संसाधन की कौशल व अन्वेषण क्षमता समाप्त होती गयी। शिक्षा द्वारा देश की अर्थव्यवस्था को क्षतिग्रस्त करने की मैकाले की नीति आज भी साकार होती दिखाई देती है। वर्तमान भारतीय शिक्षा द्वारा उत्पन्न सर्वोच्च प्रतिभाओं का उपयोग आज भारत में तथा विदेशों में काम कर रही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये ही काम करने तक सीमित रह गया है।

ब्रिटिश काल में स्थापित कॉन्वेंट और मिशनरी शिक्षण संस्थाओं के अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा एवं अंग्रेजी जीवन शैली के प्रति आम जन का झुकाव देखते हुए, स्वतंत्र भारत में क्रिश्चियन नाम देकर अंग्रेजी माध्यम के अनेक निजी विद्यालय एवं महाविद्यालय स्थापित हो गए। ब्रिटिश साम्राज्य से आजादी के बाद भारत में मैकाले शिक्षा के कारण स्थापित अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभुत्व को निजी शिक्षण संस्थानों द्वारा लाभ कमाने का माध्यम बना लिया गया है। इनमें अंग्रेजी में उच्च स्तरीय शिक्षा के नाम पर ऊँची फीस ली जाने लगी। सरकारी शिक्षण संस्थानों में हिन्दी माध्यम में सामान्य लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार दी जाने वाली शिक्षा की अपेक्षा मँहगें निजी व अंग्रेजी माध्यम के शिक्षण संस्थानों में पढ़ना सम्पन्नता व विद्वत्ता का परिचायक बन गया। इस प्रकार भाषा के आधार पर निजी व सरकारी शिक्षण संस्थाओं में समाज का श्रेणीगत आर्थिक विभाजन कर मैकाले की भारत को मानसिक रूप से गुलाम बनाने की दूरगामी विद्वेषपूर्ण नीति आज भी साकार हो रही है।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने के प्रयास प्रारम्भ हुए। इनमें 1948-49 में राधाकृष्णनन आयोग, 1952-53 में मुदलियार आयोग, 1964-66 में कोठारी आयोग तथा 1968 में दी गई शिक्षा नीति द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली के पुर्ननिर्माण का प्रयास किया गया। 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) का गठन कर शिक्षा का दस वर्षीय कार्यक्रम तय किया गया। 1986 में सभी वर्गों के विचारों को सम्मिलित कर राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की गई। 30 वर्ष बाद 2017 में पुन: शिक्षा व्यवस्था में सुधार की दिशा में कदम उठाते हुए नई शिक्षा नीति का प्रारूप तैयार किया गया है। यह शिक्षा नीति इनक्ल्युसिव एजुकेशन तथा शोध एवं नवाचार को बढ़ावा देने पर आधारित होगी। लगभग सभी आयोगों द्वारा शिक्षा व्यवस्था में अर्थव्यवस्था सुधारने, ग्रामीण विकास, आध्यात्मिक विकास, भारतीय परम्पराओं और मूल्यों को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्यों की सिफारिश की गई है। परन्तु आजादी के 70 वर्षों बाद भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था राष्ट्र का सामाजिक-आर्थिक विकास करने एवं आने वाली पीढ़ियों को सही दिशा देने का शक्तिशाली माध्यम नही बन सकी है।

वैश्विक परिदृश्य में आज भारत आर्थिक विकास की ओर तेजी से बढ़ता नजर आता है, किन्तु इसमें शिक्षा का योगदान, व्यवस्था के क्रियान्वयन एवं गतिशीलता की कमियों के कारण न्यूनतम बना हुआ है। समुचित शिक्षा व्यवस्था का अभाव होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों और युवा शक्ति से सम्पन्न देश होते हुए भी भारत आज

ज्ञान सम्पन्न देश नही बन सका है। सिंगापुर, स्विटजरलैण्ड, ऐसे छोटे देश है जो संसाधन सम्पन्न नही थे किन्तु ज्ञान सम्पन्न बने और आज सबसे विकसित साधन सम्पन्न देश बन गये हैं। जापान अनेक प्राकृतिक आपदाओं और विषम परिस्थितियों को झेलते हुए भी ज्ञान सम्पन्न देश बना। परमाणु विभिषिका को झेल चुका आज का जापान अपने ज्ञान, तकनीक के आधार पर भारत को सभी क्षेत्रों में सहायता देने की क्षमता रखता है। आज से 50 वर्ष पहले तक शिक्षा के क्षेत्र में भारत चीन से बहुत आगे था किन्तु आज शिक्षा के क्षेत्र में चीन के कई विश्वविद्यालय पीआईएसए विश्व रैंकिंग में अपना स्थान बना चुके हैं जबकि भारत का एक भी शिक्षण संस्थान अपना नाम दर्ज नहीं करवा सका है। दक्षिण कोरिया और फिनलैण्ड जैसे छोटे-छोटे देश अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा व मूल्यों के आधार पर विश्व की सर्वोत्कृष्ट शिक्षा व्यवस्था देने वाले देश बन गये हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को व्यावहारिक बनाने के लिये शिक्षण को सैद्धान्तिक के साथ सीखने पर आधारित (Learning based) बनाने की आवश्यकता है। इसके लिये पाठ्यपुस्तकों में लर्निंग कन्टेन्ट (सीखने की सामग्री) व तकनीकी उपलब्ध करवायी जानी चाहिये। पाठ्यक्रम में औपचारिक एवं नियमित शिक्षण में ज्ञान, विज्ञान के साथ भारतीय साहित्य, भारत का इतिहास, एवं मानविकी विषयों को समान रूप से प्रोत्साहन मिले। अनौपचारिक शिक्षण के कुछ कालांश निर्धारित कर भारतीय कला, शिल्प जैसी अनेक विधाएँ सिखाने से विलुप्त होती संस्कृति बचेगी, साथ ही सामाजिक कार्यों के माध्यम से मानवीय मूल्यों का संवर्धन होगा। उनमें अपने परिवेश को देखकर भारतीय समाज की पृष्ठभूमि ज्ञात होगी। उनमें स्वावलम्बन, परिश्रम, ईमानदारी, निष्ठा जैसे जीवन मूल्यों का संचरण होगा। सह शैक्षणिक गतिविधियाँ एवं कार्यशालाएँ सहयोग द्वारा काम करने व राष्ट्रीय एकता का भाव विकसित करने में अधिक महत्त्वपूर्ण होंगी। ऐसे रचनात्मक प्रयोगों से गाँधी आश्रम व टैगोर के शांति निकेतन को, प्रत्येक विद्यालय-महाविद्यालय में पुन: जीवंत किया जा सकेगा। रचनात्मकता से जुड़े विषयों को सभी स्थानों पर समान रूप से हिन्दी पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से सिखाया जाये। इस तरह भाषायी असमानता व विद्वेष समाप्त कर शिक्षा का सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्मित होगा। इनसे विद्यार्थी व शिक्षक दोनों को रुचि अनुसार सीखने की नई तकनीकें जानने व कार्य के अनुभव को बढ़ाने के अवसर मिलेंगे।

शिक्षा, व्यक्ति के जीवन में सीखने का माध्यम होती है, जिसे शिक्षण संस्थानों में शिक्षक पाठ्यपुस्तकों की सहायता से सरल तरीके से प्रेषित कर विद्यार्थी के लिये शिक्षा को सुगम एवं उपयोगी बनाता है। अत: पाठ्यपुस्तकें शिक्षा व्यवस्था का अहम हिस्सा होती है। पाठ्यक्रम में नवाचार लाते हुए संदर्भ पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध कराना जरूरी है। पाठ्यपुस्तकें देश की सभ्यता व संस्कृति को परिलक्षित करती है। पाठ्यपुस्तकों में दी गई पाठ्यक्रम सामग्री व निर्देशों का अनुसरण करके ही शिक्षक विद्यार्थी को जानकारी, ज्ञान व कौशल में दक्ष बनाता है।

सीखने व जानकारी प्राप्त करने के लिये शिक्षा व्यवस्था में औपचारिक शिक्षा का प्रावधान है। जानकारियों को स्मरण रखने की क्षमता और सीखने की दक्षता के मूल्यांकन के लिये दी गई परीक्षा पद्धति इस प्रक्रिया को विद्यार्थी के लिये तनावग्रस्त बनाती है। इससे विद्यार्थी द्वारा विषय को आत्मसात करने तथा आचरण में सम्मिलित करने जैसे शिक्षा के मूल उद्देश्य समाप्त हो जाते हैं। विदेशी परीक्षा प्रणाली जैसे CBCS (Choice based credit system) में आंशिक रूप से ग्रेड पॉईन्ट देने की व्यवस्था तो अपनायी जाती है किन्तु मूल्यांकन का आधार तथा सत्र पर्यन्त शैक्षणिक प्रदर्शन में धीरे-धीरे सुधार के अवसर प्रदान कर शिक्षा व्यवस्था को तनावमुक्त बनाने की प्रक्रिया को विद्यार्थियों के विशाल समूह तथा तकनीकी साधनों के अभाव में अपनाया जाना संभव नही होता।

भारतीय परिस्थितियों में शिक्षा का डिजीटलीकरण करने को ही उसकी श्रेष्ठता का मापदण्ड नहीं बनाया जा सकता। पिछले कई वर्षों से बड़ी संख्या में खोले जाने वाले विद्यालय एवं महाविद्यालयों में विद्यार्थियों की नामांकन संख्या बढ़ी है किन्तु उनमें मूलभूत सुविधाओं की पूर्ति तथा शिक्षकों की नियुक्ति के लिये पर्याप्त निवेश की आवश्यकता है। निवेश के लिये निजी कम्पनियों से आर्थिक सहायता ली जा सकती है किन्तु संसाधन उपलब्ध करवाना, शिक्षकों की नियुक्ति में पारदर्शिता, प्रवेश प्रक्रिया में पारदर्शिता, विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में निरीक्षण व उनमें परिणामों की समीक्षा आदि की जवाबदेही सरकार द्वारा ही सुनिश्चित की जाये अन्यथा शिक्षा व्यवस्था पूर्ण रूप से निजी क्षेत्रों को सौंपने से शिक्षा का व्यापारीकरण होगा तथा सामान्य जन शिक्षा प्राप्त करने के मूल अधिकार से वंचित रह जायेगा।

यदि भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आधुनिक तकनीक के साथ भारतीयता की आत्मा और संस्कृति के अनुरूप शिक्षण की अनुकूल परिस्थितियों की स्थापना और विकास किया जायेगा तभी सन् 2027 में जब भारत विश्व का सबसे अधिक युवा आबादी वाला प्रथम देश होगा तब देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में युवा शक्ति का शत-प्रतिशत योगदान प्राप्त हो सकेगा। भारत अपनी ज्ञान आधारित मूल शिक्षा के आधार पर विश्व मानवता को नई दिशा देने में सक्षम होगा। ❑

(व्याख्याता रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,उदयपुर (राज.)

# राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप

**इस शिक्षा व्यवस्था में हर स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा के न्यूनतम स्तर के निर्धारण और सामाजिक व्यवस्था की समझ को विकसित करने के पर्याप्त इंतजाम की भी बात की गई है। शिक्षा देने और ग्रहण करने के दौरान भाषाई विविधता बाधा न बने, इसके लिए भी कुछ बिन्दुओं पर सक्रिय पहल करने पर जोर देते हुए कहा गया है कि, ''संपर्क भाषा को बढ़ावा देने के अलावा पुस्तकों का एक से दूसरी भाषा में अनुवाद करने और बहुभाषी शब्दकोशों और शब्दावलियों के प्रकाशन के लिए भी कार्यक्रम चलाये जाएँगे। युवा वर्ग को अपनी सूझ-बूझ के अनुसार देश की महिमा और गरिमा पहचानने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा''।**

❑ **डॉ. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल**

**मा**नव समाज सभ्यता के शुरूआती दौर से ही सीखने की इच्छा से संचालित रहा है। उसके इसी स्वभाव ने शिक्षा के विविध और विशिष्ट आयामों के सिर्फ विकास में ही नहीं बल्कि उसके सघन प्रसार में भी प्रेरणापरक भूमिका निभाई है और आज भी शिक्षा मानव समाज के स्वभाव की संरचना के आधार पर ही अपना ढाँचा गढ़ने की कोशिश कर रही है। चूंकि हर मानव समाज किसी न किसी राष्ट्र का अहम अंग होता है, इसलिये शिक्षा के ढाँचे का स्वरूप और स्वभाव राष्ट्रीय पहचान लिए रहता है। अगर ऐसा न हो तो शिक्षा के प्रति उस राष्ट्र के बुनियादी सरोकारों में सुधार की गुंजाइश हमेशा बनी रहेगी। आज हमारा देश आर्थिक और तकनीकी लिहाज से उस मुकाम पर पहुँच गया है जहाँ से हम अब तक के संचित संसाधनों का सार्थक उपयोग करते हुए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समावेशी लाभ पहुँचाने का प्रबल प्रयास करें। हम ऐसा करने में तभी सफल हो पायेंगे जब शिक्षा को देश के समग्र जन समाज को आसानी से उपलब्ध करा सकें।

जब हम अपनी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्वतंत्रता के बाद के इतिहास में उठाया गया पहला महत्त्वपूर्ण कदम था, जिसमें राष्ट्र की समावेशी प्रगति के साथ-साथ सामान्य नागरिकता और सामाजिक संस्कृति की भावना को मजबूती प्रदान करने की वकालत की गई है। उसमें शिक्षा प्रणाली के पुनर्निर्माण तथा प्रत्येक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बनाने पर बल दिया गया है। इसके अलावा इस शिक्षा नीति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी, नैतिक मूल्यों को विकसित करने पर और शिक्षा व जीवन में सघन संबंध स्थापित करने पर भी जोर दिया गया है। इस शिक्षा नीति को अपनाने का परिणाम यह निकला कि हमारे देश में शिक्षा का राष्ट्रीय भावना के साथ व्यापक व सघन प्रचार-प्रसार हुआ। आज हमारे यहाँ लगभग हर गाँव में सरकारी प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हैं। हालाँकि यह भी उतना ही सच है कि जिस रूप में अवधारणा निर्मित की गई उसके अनुरूप इस शिक्षा नीति के अधिकांश

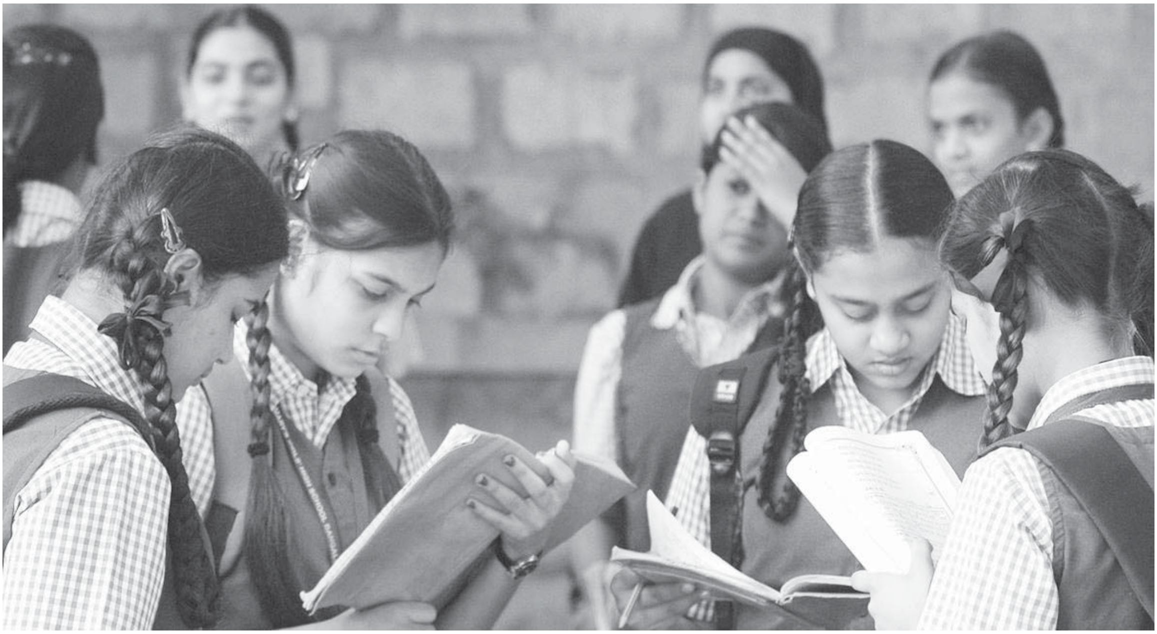

सुझावों को उचित क्रियान्वयन पर आधारित योजनाओं के अभाव में ठीक तरीके से लागू नहीं किया जा सका। इसी वजह से शिक्षा समाज के विभिन्न वर्गों तक नहीं पहुँच सकी। इसकी गुणवता में सुधार लाने और उसके सार्वजनिक विस्तार के लिए आर्थिक संसाधन की पर्याप्तता पर भी ठीक से अमल नहीं किया गया।

इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए और सामाजिक विकास को नए सिरे से गति देने के लिए जनवरी 1985 में तत्कालीन सरकार ने नई शिक्षा नीति के निर्माण की घोषणा की। इसके बाद 1986 में भारत की अगली शिक्षा नीति आई। इसने इस बात पर बल दिया कि – ''मनुष्य स्वयं एक बेशकीमती सम्पदा है, अमूल्य संसाधन है। जरूरत इस बात की है कि उसकी परवरिश गतिशील एवं संवेदनशील हो और सावधानी से की जाये। हर इंसान का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। जन्म से मरने तक, जिंदगी के हर पड़ाव पर उसकी समस्याएँ और जरूरतें होती हैं। विकास की इस पेचीदा और गतिशील प्रक्रिया में शिक्षा अपना उत्प्रेरक योगदान दे सके, इसके लिए बहुत सावधानी से योजना बनाने और इस पर पूरी लगन के साथ अमल करने की आवश्यकता है।''

इस शिक्षा नीति ने भारतीय विचारधारा के स्वरूप को अपनाने के साथ–साथ गाँव और शहर के फर्क को खत्म करने की दिशा में कदम बढ़ाये जाने पर भी जोर दिया, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले मानव समाज के अंदर दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली सुविधाओं का अभाव दूर हो और समग्र सामाजिक विकास को संतुलित गति मिल सके। इसके अलावा इसने भविष्य में मानव संसाधनों को तैयार करने की रणनीतिगत अवधारणा भी विकसित की। यह शिक्षा नीति ऐसा मानकर चलती है कि भविष्य में – ''अगले दशक नए तनावों से निपटने और समस्याओं के साथ अभूतपूर्व अवसर भी प्रदान करेंगे। उन तनावों से निपटने और अवसरों का फायदा उठाने के लिए मानव संसाधन को नए ढंग से विकसित करना होगा। आने वाली पीढ़ियों के लिए यह भी जरूरी होगा कि वे नए विचारों को सतत सृजनशीलता के साथ आत्मसात कर सकें''। यह सृजनशीलता सिर्फ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से ही संबंधित नहीं है, बल्कि इससे आगे 'मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय' के प्रति गहरी प्रतिबद्धता से भी जुड़ी हुई है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का यही स्वरूप कारगर साबित हो सकता है, क्योंकि इसी से हमारा भौतिक और आध्यात्मिक विकास संभव है। एक प्रकार से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का यह रूप शिक्षा प्रणाली के वर्तमान और भविष्य की निर्माण प्रक्रिया को ही नहीं, बल्कि, सामाजिक संस्कृति के चौतरफा विकास की प्रक्रिया को भी परिभाषित करने का अहम प्रयास करता दिखता है।

इन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के निर्माण में देखा जाये तो हमारी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना समाहित दिखती है। जब हम राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के मूल परिप्रेक्ष्य की बात करते हैं तो पाते हैं कि – ''राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का मूल मंत्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक हर विद्यार्थी को बिना किसी जात–पाँत, धर्म, स्थान या लिंग भेद के,

लगभग एक जैसी शिक्षा उपलब्ध हो। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सरकार उपयुक्त वित्तपोषित कार्यक्रमों की शुरूआत करेगी। 1968 की नीति में अनुशंसित सामान्य स्कूल प्रणाली को क्रियान्वित करने की दिशा में प्रभावी कदम उठाये जाएँगे। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत यह जरूरी है कि सारे देश में एक ही प्रकार की शैक्षिक संरचना हो।''

यह शिक्षा व्यवस्था 1986 की 10+2+3 के फोर्मूले को ही अपनाकर चलने पर बल देती है। लेकिन इस विभाजन में थोड़ी स्पष्टता दर्शाने के लिए पहले 5 वर्ष प्राथमिक स्तर की शिक्षा; 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर और 2 वर्ष हाई स्कूल की शिक्षा का प्रस्ताव रखती है। उसमें शिक्षा के एक ऐसे ढाँचे की भी परिकल्पना की गई है- ''जिसमें एक सामान्य केंद्रिक (कामन कोर) होगा और अन्य हिस्सों की बाबत लचीलापन रहेगा, जिन्हें स्थानीय पर्यावरण तथा परिवेश के अनुसार ढाला जा सकेगा। 'सामान्य केंद्रिक' में भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियों तथा राष्ट्रीय अस्मिता से संबन्धित अनिवार्य तत्व शामिल होंगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोये जाएँगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को हर इंसान की सोच और जिंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी''। जिन राष्ट्रीय मूल्यों की बात यह शिक्षा व्यवस्था उठाती है वे- सामाजिक संस्कृति, लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच सहअस्तित्व पर आधारित समानता, पर्यावरण संरक्षण, हर स्तर पर सामाजिक समता, सीमित परिवार के महत्व इत्यादि से जुड़े हुए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में सिर्फ राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति ही नहीं बल्कि विद्यार्थी में 'वसुधैव कुटुंबकम्' का भाव व विचार विकसित करने की वकालत भी की गयी है। इससे आने वाली पीढ़ी में 'अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना' का विकास हो। यह व्यवस्था शिक्षा के इस स्वरूप को प्रतिबद्धता के साथ अपनाने पर बल देती है। इस शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के इन समान अवसरों पर जोर तो दिया गया है लेकिन इससे आगे ''समानता के उद्देश्य को साकार करने के लिए सभी को शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होनी भी जरूरी है जिससे सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिले। इसके अतिरिक्त समानता की मूलभूत अनुभूति केंद्रिक शिक्षा क्रम के द्वारा करवाई जाएगी। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएँ दूर हों''।

इस शिक्षा व्यवस्था में हर स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा के न्यूनतम स्तर के निर्धारण और सामाजिक व्यवस्था की समझ को विकसित करने के पर्याप्त इंतजाम की भी बात की गई है। शिक्षा देने और ग्रहण करने के दौरान भाषाई विविधता बाधा न बने, इसके लिए भी कुछ बिन्दुओं पर सक्रिय पहल करने पर जोर देते हुए कहा गया है कि, ''संपर्क भाषा को बढ़ावा देने के अलावा पुस्तकों का एक से दूसरी भाषा में अनुवाद करने और बहुभाषी शब्दकोशों और शब्दावलियों के प्रकाशन के लिए भी कार्यक्रम चलाये जाएँगे। युवा वर्ग को अपनी सूझ-बूझ के अनुसार देश की महिमा और गरिमा पहचानने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा''।

शिक्षा के हर प्रारूप पर प्रकाश डालती हमारी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को हमारे संविधान, शिक्षा नीतियों आदि के द्वारा व्यापक और गहरी अवधारणाओं में बांधा तो गया है, लेकिन अभी भी हम अपने राष्ट्रीय संदर्भ में सबके लिए गुणवत्ता से युक्त शिक्षा को उपलब्ध कराने में सफल नहीं हुए हैं। यह असफलता दर्शाती है कि हमारे पास दूर दृष्टि होने के बावजूद भी उस दृष्टि पर आधारित सोच को सही दिशा हम नहीं दे पा रहे हैं। हमारे यहाँ दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में शिक्षा की दशा और दिशा को सुधारने के लिए सक्रिय भागीदारी काफी कम दिखाई दे रही है। इसी वजह से एक बार फिर हमारे राष्ट्र को एक नई शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस हो रही है। इसका प्रारूप क्या होगा यह अभी निश्चित नहीं है। यह स्वागत योग्य कदम तो है; लेकिन इसका हश्र पिछली शिक्षा नीतियों जैसा न हो, इस पर हमें खासतौर पर ध्यान देना होगा। हमें राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को दुरूस्त करने के लिए इससे जुड़े प्रशासन और इससे संबंधित जरूरी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता लाते हुए पर्याप्त वित्तीय प्रबंधन करने होंगे। बुनियादी सुविधाओं का व्यापक स्तर पर विस्तार करना होगा। हम शिक्षा के क्षेत्र में आज जिस स्तर पर हैं उससे कहीं ज्यादा हमारी जरूरतें हैं। इन शैक्षिक जरूरतों को पूरा करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए तभी हमारी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था सही दशा और दिशा प्राप्त कर पाएगी और हम एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण कर पाएंगे।

हमारे माननीय प्रधानमंत्री महोदय व वर्तमान सरकार इस दिशा में प्रयासरत हैं। सबके लिए गुण्वत्तायुक्त कौशलपरक व्यवसायोन्मुखी सर्वसमावेशी शिक्षा ही आने वाली पीढ़ी को सच्चे मायने में देश का सफल नागरिक सिद्ध कर हमारे देश को प्रगति के पथ पर त्वरित गति प्रदान कर सकेगी।❑

(आचार्य, भौतिक शास्त्र एवं प्राचार्य
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर)

ऐसी स्थिति में शिक्षा नीति बनाते समय हमें वरीयता मात्र प्राथमिक शिक्षा को देने के स्थान पर, वैज्ञानिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा व रोजगारोन्मुखी शिक्षा का ढ़ाँचा विकसित करने को देनी होगी। हर वर्ष के बजट में शिक्षा पर बजट की राशि पर आवंटन में बढ़ोतरी होनी चाहिए। अनुसंधानों पर विशेष व्यय का ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि वस्तुओं की किस्मों की गुणवत्ता में सुधार कर लागतों में कमी लाई जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के साथ-साथ ही बच्चों में उद्यमिता विकास व किस्म नियन्त्रण जैसे विषय पर वैज्ञानिक शोधों को सम्पन्न करने के लिये स्वतन्त्रता उपलब्ध करवायी जा सके ताकि विश्वविद्यालयी शिक्षा द्वारा व्यर्थ के शोधों की बढ़ोतरी न हो। प्राथमिक विद्यालयों को वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयोगशालाओं में बदलने की रणनीति शिक्षा नीति के मसौदे में शामिल की जानी चाहिए।

# भारतीय शिक्षा व्यवस्था : चुनौतियाँ और समाधान

❑ डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल

**बा**लक और प्रगतिशील समाज के मध्य गहरी खाई पाटने की दृष्टि से शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जो किसी निश्चित लक्ष्य के अनुसार समाज की आवश्यकताओं व आदर्शों को दृष्टिगत रखते हुए बालक की मूल प्रवृत्तियों का इस प्रकार शोधन कर सकती है जिससे बालक और समाज दोनों का विकास हो सकता है। छोटे समाज और समान विचारधारा वाले समाज में समाज के आदर्शों के अनुरूप नीति बनाकर उसका प्रतिनिधित्व करना आसान होता है लेकिन बड़े समाज हेतु लक्ष्य निर्धारण असंभव नहीं लेकिन कठिन कार्य अवश्य है। अपना भारत विभिन्न विचारधाराओं, भाषाओं, संस्कृतियों व भौगोलिक विभिन्नताओं का प्रतिनिधित्व करता है। कोई भी नीति यदि राष्ट्रीय स्तर पर तैयार की जाती है तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसमें समस्त समूहों की आवश्यकताओं व आकाँक्षाओं को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान कर उनकी विभिन्नताओं का सम्मान किया जाय ।

1986 के पश्चात् एक लम्बे अन्तराल से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया जा रहा है पहली बार राष्ट्रीय नीति पर मात्र राजनेताओं की छाप नहीं होगी, वरन् हर स्तर पर शिक्षाविदों, अध्यापकों व समाज के विभिन्न समूहों के विचार आमन्त्रित किए जा रहे हैं. उससे पता चलेगा कि प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में किस प्रकार परिवर्तन होना चाहिये और वे परिवर्तन किस प्रकार संभव हैं। यह सर्वविदित है कि हर नीति या योजना के परिणाम दूरगामी निकलते हैं व दूरदृष्टि महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है अत: आवश्यक हो जाता है कि नीति निर्धारण विशिष्ट रणनीति का योजनाबद्ध रूप हो। सर्वप्रथम समस्त उपलब्ध व उपलब्ध हो सकने वाले संसाधनों पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए, इसमें भौतिक, वित्तीय व मानवीय संसाधनों का पूर्वानुमान लगाया जाना चाहिए क्योंकि भारत में प्रतिवर्ष युवा होने वाले बच्चों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

दूसरा चरण प्राथमिकताओं व

आवश्यकताओं का निर्धारण करना है। आवश्यकता, प्राथमिक, तात्कालिक व अन्तर्राष्ट्रीय हो सकती है। प्राथमिक आवश्यकता सब को काम व रोजगार उपलब्ध करवाना है। शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की हो कि हर युवा कर्मठ हो, उद्यमिता व प्रबंधन के गुणों से युक्त हो, ना कि अनावश्यक डिग्रियों का बोझ उठाए दिशाहीन, दिग्भ्रमित व हताश हो। आर्थिक विकास दर 7-9 प्रतिशत तक करने के लिए आवश्यक है कि जिस व्यवसाय से भारत की अधिकांश जनता जुड़ी है, यानि कृषि, इसे व्यावसायिक बनाकर, प्रारंभ से ही बच्चों को कृषि का महत्त्व व कृषि में नवीनतम पद्धतियों का ज्ञान कराया जाना चाहिए ताकि कृषि उत्पादों का व्यावसायिक उपयोग हो जिससे कृषि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाभदायक व मुनाफा कमाने वाली हो तथा देश की सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति में अच्छी भागीदारिता निभा सके। हरित क्रांति के लिए हमने बेतहाशा कीटनाशकों व रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कर अपनी कृषि योग्य भूमि को बंजर बनाकर उसकी उर्वराशक्ति का ह्रास कर दिया है, भूमण्डलीकरण के इस युग में बढ़ती प्रतिस्पर्धा में हमारे कृषि उत्पाद निर्यात क्षेत्रों से बहिष्कृत हो रहे हैं क्योंकि उनमें हानिकारक तत्वों की बहुलता पाई जा रही है।

अत: प्राथमिक आवश्यकता सबको काम देने हेतु प्रारम्भ से ही पाठ्यक्रमों में शारीरिक श्रम, व कृषि को उद्योग व निर्यातोन्मुखी बनाने हेतु आने वाली कठिनाइयों की जानकारी व उपायों का समावेश किया जाना है। तात्कालिक आवश्यकता शिक्षा की गुणवत्ता से जुड़ी है. आज कोई भी राष्ट्र स्वयं की दुनिया में सिमटा हुआ नहीं हैं। हमने भी वित्त की उपलब्धता व प्रत्यक्ष निवेश में वृद्धि हेतु विदेशी निवेशकों को (कृषि उद्योग यहाँ तक की शिक्षा के क्षेत्रों में भी) विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर अनेक नियन्त्रणों को हटाकर नियमों को उदार बनाकर उनका आवागमन सुगम बना दिया है। अब यदि हमें प्रतिस्पर्धा में भाग लेना है, तो शिक्षा नीति का निर्धारण इस प्रकार किया जाना आवश्यक है कि उसमें गुणवत्ता का समावेश हो। क्योंकि अब आने वाले बच्चों को हर क्षेत्र- व्यापार-वाणिज्य, कृषि, उद्योग, बैंकिंग व बीमा व्यवसाय, रिटेल व थोक व्यापार, शिक्षा के क्षेत्र में रोजगार (अध्यापक व प्राध्यापक) आदि सभी में विदेशियों से कठोर प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। हमारे राष्ट्र ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में विभिन्न क्षेत्रों में 100 प्रतिशत तक की छूट प्रदान कर दी है। राष्ट्रीय विकास दर में अभिवृद्धि का प्रमुख स्रोत अभी सेवा क्षेत्र बना हुआ है, हमारी युवा पीढ़ी काफी बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा का अर्जन कर देश की सकल राष्ट्रीय आय में अपना योगदान दे रही है, परन्तु आज विभिन्न राष्ट्र अपनी नीतियों में बदलाव कर अपने राष्ट्र के युवाओं को तरजीह दे रहे हैं इनमें अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया ने नीतियों में बदलाव के स्पष्ट संकेत दे दिये हैं। आने वाले समय में उन युवाओं को भी देश में ही खपाना होगा। दूसरी तरफ हमारे निर्यात आज भी प्राथमिक वस्तुओं व कृषि आधारित उद्योगों के हैं जिनके अनिवार्य प्रकृति के होने के कारण उनमें लोचशीलता

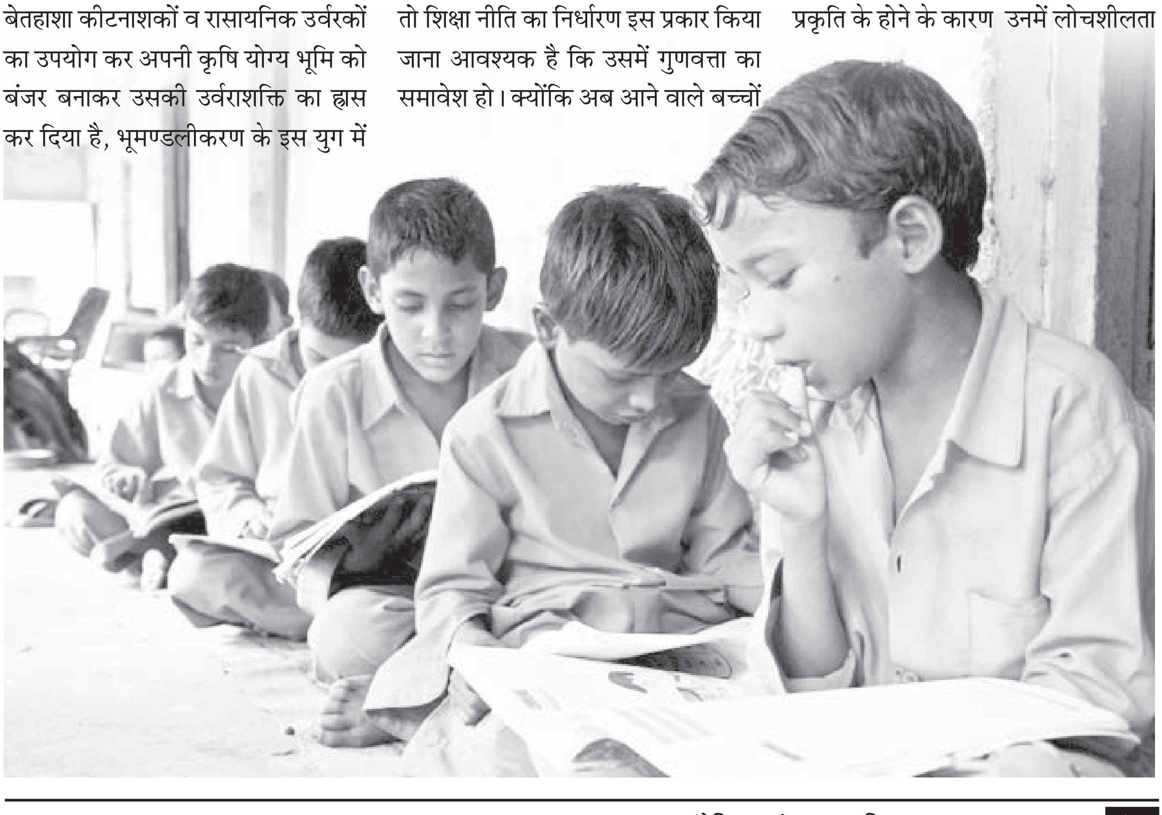

का अभाव है, उनकी माँग बेलोच है। साथ ही फ्राँस जैसे राष्ट्र जो हमारे सूती वस्त्रों के प्रमुख आयातक राष्ट्र हैं हमारे द्वारा हानिकारक रंगों (ऐजोडाइज)के उपयोग के कारण आयात प्रतिबन्धित कर रहे हैं। अमेरिका के द्वारा भी धारा 301 व सुपर 301 लगाकर आयातों को प्रतिबन्धित किया जा रहा है। रुपये का लगातार अधिमूल्यन हो रहा है। अर्थात् विश्व के राष्ट्र हमारी इतनी बड़ी जनसंख्या को मात्र उपभोक्ता की नजर से देख रहे हैं जहाँ सर्वाधिक माल की खपत की जा सके।

ऐसी स्थिति में शिक्षा नीति बनाते समय हमें वरीयता मात्र प्राथमिक शिक्षा को देने के स्थान पर, वैज्ञानिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा व रोजगारोन्मुखी शिक्षा का ढ़ाँचा विकसित करने को देनी होगी। हर वर्ष के बजट में शिक्षा पर बजट की राशि पर आवंटन में बढ़ोतरी होनी चाहिए। अनुसंधानों पर विशेष व्यय का ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि वस्तुओं की किस्मों की गुणवत्ता में सुधार कर लागतों में कमी लाई जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के साथ-साथ ही बच्चों में उद्यमिता विकास व किस्म नियन्त्रण जैसे विषय पर वैज्ञानिक शोधों को सम्पन्न करने के लिये स्वतन्त्रता उपलब्ध करवायी जा सके ताकि विश्वविद्यालयी शिक्षा द्वारा व्यर्थ के शोधों की बढ़ोतरी न हो। प्राथमिक विद्यालयों को वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयोगशालाओं में बदलने की रणनीति शिक्षा नीति के मसौदे में शामिल की जानी चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारे पड़ोसी राष्ट्र चीन व पाकिस्तान हमारी सीमाओं पर घात लगाए बैठे हैं। चीन, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल आदि ने चारों तरफ से हमारी सीमाओं को घेर रखा है व आक्रमण की संभावना हर क्षण बनी रहती है। दूसरी तरफ आर्थिक मोर्चे पर उन्होंने अपने सामान से हमारी भारत भूमि को आच्छादित कर रखा है जिसके कारण से हमारी अनेक औद्योगिक इकाइयाँ बन्द हो गयी हैं। पाकिस्तान आतंकवाद व अपनी अनेक गतिविधियों द्वारा देश के आन्तरिक मामलों में दखल दे रहा है तथा हमारी सीमाओं पर लगातार बमबारी करवा रहा है। ऐसी स्थितियों में हम मात्र सफेद हाथी बनकर निर्द्वन्द्व विचर नहीं सकते। हमें खूनी भेड़ियों पर आक्रामक बनकर टूटना होगा, उसके लिए शुरू से ही हमें अपने बच्चों को सैन्य प्रशिक्षण भी अनिवार्य रूप से देना होगा। N.C.C., N.S.S., समाज सेवा, स्काउटस और गाइडस प्रशिक्षण को शुरूआत से ही पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाना होगा।

इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों के मद्देनजर राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा सार्थक पहल से प्रभावी कदम उठाए जाने चाहिए। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी शिक्षा शामिल हो, वह एक इकाई के रूप में हो। सम्पूर्ण इकाई एकजुट होकर भूख, गरीबी, बेरोजगारी को समाप्त करने के उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु कार्य करें तथा प्रशासनिक व शैक्षिक क्रियाकलापों में समन्वय व सामंजस्य हो।

आगामी शिक्षा नीति में जिन तत्त्वों को शामिल किया जा सकता है; जिन पर गहन विचार विमर्श व परामर्श आवश्यक है; जिससे प्राथमिक तात्कालिक व अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है; इनसे जुड़े निम्न विषय प्राथमिक से विश्वविद्यालयी शिक्षा तक हो सकते हैं।

**पाठ्यक्रम** – पाठ्यक्रम, रुचिकर, आवश्यकता आधारित जीवन से सम्बन्धित विकास की ओर प्रवृत करने वाला व लचीला होना चाहिए। इसमें राष्ट्र की आकाँक्षाओं व प्राथमिकताओं का समावेश होना चाहिए।

**विद्यालय** – विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय चाहे सरकारी हो या निजी क्षेत्र के, पूर्णतः सुरक्षित व विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं के मद्देनजर उपकरणों, खेल मैदानों, प्रयोगशालाओं व पुस्तकालयों से सुसज्जित होने चाहिए, जहाँ विद्यार्थी स्वतंत्र वातावरण में स्वयं कर के सीख सके।

**पुस्तकें** – पुस्तकों में व्यर्थ की सूचनाओं का समावेश ना होकर अर्थपूर्ण, सृजन में सहायक, क्रियात्मक प्रयोग आदि का समावेश होना चाहिए तथा वह व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुरूप लिखी होनी चाहिए। साथ ही पुस्तकें ऐसी हो जो बच्चे के विकास को प्रोत्साहित करें। हर सरकार के साथ पुस्तकों को बदलने की प्रवृति नहीं होनी चाहिए।

**शिक्षक** – शिक्षक, शिक्षा के आधार स्तम्भ हैं। शिक्षा व्यवस्था में वेतन से लेकर, कार्य अवधि, उन्नति के अवसर, कार्य का मापदण्ड, शोध के अवसर व स्तर का निर्धारण, कामचोरी, ट्यूशन्स को रोकने हेतु सक्रिय नीति, नए अध्यापकों की भर्ती, भर्ती हेतु उचित दिशा निर्देश, अतिथि शिक्षकों का समायोजन सभी बातों के लिये शिक्षा नीति में मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाए जाने चाहिए।

**शिक्षार्थी** – शिक्षार्थी मेहनती, कर्मठ, राष्ट्रभक्त, साहसी, भविष्यदृष्टा बन सकें इसके लिए आवश्यकता है उनके कठोर प्रशिक्षण की, परिश्रम पर जोर देने की न कि बिना मेहनत अगली कक्षा में प्रोन्नत करने की।

इन उपायों के साथ-साथ तकनीकी के सुचारू उपयोग द्वारा सब तक पहुँच बनाकर सबको साथ लेकर, उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा के समतामूलक अवसर उपलब्ध करवाकर ही उनकी मानवशक्ति का समुचित उपयोग करते हुए उनका खुद का व समाज का विकास करते हुए राष्ट्र का चहुँमुखी विकास किया जा सकता है । ❑

(पूर्व तदर्थ व्याख्याता, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर)

# Towards Bharatiya Education Tomorrow

**On a wider and more practical level, we have to do much. On the first place, we have to look for people who are trying to practice these ancient Bharatiya methods and promote them on a deeper level. Further, we must provide some awareness regarding ancient Bharatiya wisdom to our generations, right from the very basic schooling. At such a level, we must let our generations know that Bharat has such and such knowledge traditions, and they are available in text forms for anyone to study.**

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Bharat does not have the practice of written or re corded history as done in Europe. Keeping records of things in written form is the practice of Europe, of the old. But this does not say that Bharat did not have the means, practice and ways in which incidents of importance get recorded. The methodology of Bharat had ever been distinctly different from what is done in Europe, primarily from the antiquity of Bharatiya knowledge tradition. This phenomenon, must get accounted for, when we try to discuss anything Bharatiya.

We know about the Shruti and Smriti Parampara. We also know why that used to be the case, and we also know that a language was created to fit into the requirements of the need of such Parampara. Perhaps we are not very well taught of the methodologies involved in Bharatiya knowledge tradition, which indeed appears enigmatic, though that shall really be not the case.

Recorded history is the point of discussion right now; and Bharat created a method of keeping historical events preserved through creation of legends pertaining to historical events. With every important historical phenomenon taking place, a legend is created and floated which is remembered from generations to generations. Keys to unlocking such legends remained with the scholars, and they kept incidents alive and active, from time to time, through different kinds of narratives, poetries, narratives as well as Prahasanas. One can easily make a voyage through many of our legends to look for implications towards events, through finding help from texts making such things explicit, and there are plenty of texts available to us to this end.

Like history, Bharat has very distinct methods as well as techniques towards knowledge. Just look at the texts available to us: they discuss so many things. Indeed, it shall be amazing to find that whatever those texts say are getting proved through contemporary empirical scientific investigations. It is also interesting to find that Bharatiya ancient knowledge is found more accu-

rate than contemporary empirical sciences.

**Bhartiya method of knowing**

Let us start from what is available to us as knowledge from ancient Bharat. From the post – Vedic time, we have numerous texts discussing various aspects of knowledge, and their contents get verified as accurate with the empirical sciences of present day. There are also instances when the ancient Bharatiya knowledge becomes more accurate than what contemporary empirical sciences go about demonstrating.

There are two points in Bharatiya knowledge tradition, those I consider as inescapable: everything whatever begins with the Vedas and everything whatever has one desideratum; destination, which is Moksha. All of us, are ever in between these two points in existence.

The Vedas, one need not demonstrate, are knowledge texts. It is said that the Vedas are experiences of the Maharishis. How did they gather these experiences, which are essentially knowledge of varying kinds, in a time when there was nothing like the empirical sciences of our present-day experience? The sciences as we understand gather knowledge through observation and experiment, for which one depends on one's five sense organs. Scientific instruments are fundamentally those which enhances the abilities of sense organs to a level of very high comprehension, as the sense organs in themselves have natural limits. Thus, scientific instruments facilitate the sense organs to transcend natural limitation, to which ever direction.

When the knowledge texts of Bharat records accurate knowledge from varying field, certainly not in the manner of contemporary empirical sciences, the methods adopted shall obviously be distinct and different.

Yoga is a philosophy that teaches 'Yogaj', or Yogic perception. Yogic perception is knowing without the use of human sense organs, which could be termed perception trans – sensory. In another word, it shall be seeing without using the eyes, hearing without using the ears and so on. This makes it compulsory for any student who wants to know to study Yoga and practice it as the first step towards the curriculum in any university, or Gurukul. True that basic knowledge could be taught to the student through the Smriti Shruti tradition by the Acharya, but to take them further, the student has to make his laboratory that is his mind readied through the practice of Yogaj. Naturally, both teachers and students turn out to be Yogis, and some of the Acharyas become Maharishis. Knowing through Yogaj is called 'experiential' knowledge, implying knowing direct. Thus, the knowledge from Bharatiya knowledge tradition gets termed as experiential, 'Anubhava' as contrasted with sense – object – contact empirical experience.

Indeed: this shall predate Yogic method before the Vedas in creation of knowledge: as Yogic

practice becomes a pre-requisite to everything. At the same time, we should also recall that right from the texts of Yogas to Vedas, those existed only in the Shruti Smriti tradition, our present-day texts are composed much later, reproducing them in written form. Sages like Maharishi Veda Vyasa, Maharishi Patanjali etc. are those who facilitated such texts.

Naturally, such methodology was indeed tough, and only a few could take it up. But through these methodologies, they did create a world of knowledge with utmost accuracy. With the advent of empirical sciences, there evolved new methodologies those are much simpler and easier to go about, and in the meantime, Bharatiya knowledge tradition also suffered setbacks first with the drying up of river Saraswati and subsequently through all kinds of interventions through prolonged and heavy invasions from without. The modern times produced much easier methods of knowing, and it becomes not very necessary to go by ancient very tough Bharatiya methods of knowing.

But then, Bharatiya methodology and Yogaj can never be obsolete. New scientists find the limitations of their methodology often, as they try to go beyond a given point. With the contemporary empirical manner of knowing, there comes a point from where the available methods of knowing cannot take them any further; and here, the ancient methods of knowing gets called for. That is where we find many modern scientists trying to take 'lessons' from both the Vedas and the Upanishads when they hit the 'bedrocks'.

**Modern education and curricula**

True that during the initial journey through knowledge, Bharatiya methodology is no longer needed as there ae simpler and easy methods available. But when one who tries to go further, hits the bedrock, from where modern methods shall not be able to take one any further. Here one shall indeed need help from Bharatiya knowledge tradition, if at all one still wants to go further.

To this end, it is our duty, our Dharma to make such methods of knowing intensely active to cater to the needy from the realm of search and research as well as higher level of knowing. This is where we have to revive our knowledge tradition, and it again shall be meant for a few, the needy, and the capable. It is not as ill visionaries say, that discussing ancient Bharat is going back in time. There is no going back in time, but bringing back from the old for present times for those who shall be desperate towards such things.

On a wider and more practical level, we have to do much. On the first place, we have to look for people who are trying to practice these ancient Bharatiya methods and promote them on a deeper level. Further, we must provide some awareness regarding ancient Bharatiya wisdom to our generations, right from the very basic schooling. At such a level, we must let our generations know that Bharat has such and such knowledge traditions, and they are available in text forms for anyone to study. Basic information must be provided to the citizens of Bharat right from the very beginning of the education curricula. We still teach our young that Aryan, Dravidian etc. are races, there is an Indus Valley and so on. The sciences we teach are entirely borrowed from Europe, with no mention of Bharat. European nations donot mention Bharat because they have no idea of Bharat even today, they simply do not know. Our education suffers through copy and paste kind of curricula as well.

It is interesting to make a retrospection: let each of us think about whatever we have learned right from lower KG to Ph.D. and visualise, how much of Bharatiya knowledge tradition was mentioned to us? Most of us who later take to Bharatiya knowledge tradition must have got initiations through some very ardent teachers of vision, through families, and through some acharyas who are mostly informal spiritual leaders. It indeed shall be appalling to realise how little had been even mentioned to us as students through the kind of curricula we were taught. It is this situation that shall have to change, and it is here that one shall need to restructure the entire curricula right from the Lower KG level. Information must be provided, just information, so that the citizens of Bharat shall remain aware of our past.

This at once puts us with serious and great responsibility of creating a kind of curricula that shall meet the need of the hour. It shall be time taking, it may be a long and hazardous way, nonetheless, we have to start it all. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

# विज्ञान व स्वदेशाभिमान

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

**आत्मगौरव व संस्कृति व्यक्ति में जीने की ललक जगाती है। व्यक्ति को उत्साह से जीने का कारण देती है। भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का देश के विज्ञान अनुसंधान पर भी बहुत प्रभाव पड़ा था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय भारत में विश्वस्तर के जितने वैज्ञानिक अनुसंधान हुए उतने स्वतन्त्रता के बाद देखने को नहीं मिले। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल प्रान्त ने किया था। विज्ञान के क्षेत्र में भी वंगाल ने ही राह दिखाई थी। आधुनिक विज्ञान ने उसे रूढ़ि कहकर वनों को नाश करने में भूमिका निभाई है। प्रकृति संरक्षण में आत्मा सो परमात्मा, कण कण में भगवान जैसी भारतीय सोच को पर्यावरण-विज्ञान मान चुका है, मगर बहुत देर के बाद। दुःख की बात यह कि भौतिकता का तथाकथित सुख पैसों वालों ने उठाया मगर बुरे परिणामों की मार निर्धन लोग झेल रहे हैं। भौतिक विकास के कारण हुए अतिमशीनीकरण ने आर्थिक विषमता को बहुत बढ़ा दिया है।**

कुछ लोग अपने को प्रगतिशील तथा राष्ट्रवाद या स्वदेशाभिमान की बात करने वालों को पुरातनपन्थी कहते हैं। ऐसे लोग राष्ट्र प्रेम को वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भाग नहीं मानते हैं। सत्य यह है कि स्वदेशाभिमान एक संवेदनशील मुद्दा है। वैज्ञानिक सामान्य से अधिक संवेदनशील होते हैं। वैज्ञानिकों में राष्ट्रवाद की भावना पाई जाती है। राष्ट्रवाद किसी क्षेत्र, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं होकर सम्पूर्ण पृथ्वी की साझा संस्कृति है। विज्ञान के दो विषयों में नोबल पुरस्कार पाने वाली मेडम क्यूरी ने अपने जन्मस्थल पोलैण्ड व कर्मस्थल फ्रान्स, दो देशों के प्रति अटूट राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया था। इजराइल ने बहुत कम समय में जो वैज्ञानिक प्रगति की है वह राष्ट्रप्रेम के कारण ही संभव हुई है। विश्व ने अन्तरिक्ष अनुसंधान में जिस तेजी से प्रगति की है उसका कारण भी रूस व अमेरिका के वैज्ञानिकों में स्वदेशाभिमान से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा ही रही है।

आत्मगौरव व संस्कृति व्यक्ति में जीने की ललक जगाती है। व्यक्ति को उत्साह से जीने का कारण देती है। भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का देश के विज्ञान अनुसंधान पर भी बहुत प्रभाव पड़ा था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय भारत में विश्वस्तर के जितने वैज्ञानिक अनुसंधान हुए उतने स्वतन्त्रता के बाद देखने को नहीं मिले। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल प्रान्त ने किया था। विज्ञान के क्षेत्र में भी बंगाल ने ही राह दिखाई थी। उस समय सत्येन्द्रनाथ बोस, अनिलकुमार गैन, प्रकाश चन्द्र महाल्नोबिस, जगदीशचन्द्र बोस, महेन्द्रनाथ सरकार, उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी, मेघनाथ साहा, चन्द्रशेखर वेंकट रमन आदि अनेक विश्व विख्यात वैज्ञानिक भारत में हुए। चन्द्रशेखर वेंकट रमन को 1930 में नोबल पुरस्कार मिला। डॉ.उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी आदि को एक से अधिकबार नोबल पुरस्कारों के लिए नामित किया गया था। मिसाइल के क्षेत्र में भारत को अग्रणी राष्ट्र बनाने में डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की भूमिका राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थी। पहले ही प्रयास तथा बहुत कम खर्च में मंगलयान को मंगलग्रह की कक्षा में स्थापित करने में भारत की

सफलता वैज्ञानिक राष्ट्रीयता का उदाहरण है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय वैज्ञानिक राष्ट्रीय भावना से किस प्रकार प्रभावित थे इसे जानने के लिए प्रफुल्लचन्द्र राय का उदाहरण पर्याप्त होगा। अंग्रेज लेखक माण्डलर की पुस्तक, जीवन चरित्र भण्डार में विश्व में, एक हजार महान पुरुषों में केवल एक भारतीय राजा राममोहनराय का वर्णन पाकर बालक प्रफुल्ल के मन को बहुत पीड़ा पहुँची थी। राष्ट्रभक्ति से प्रभावित प्रफुल्लचन्द्र ने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली की वह भारत को महान देश सिद्ध करेगा।

अध्ययन करने गए प्रफुल्लचन्द्र को जब विदेशियों ने यह कहा कि भारतीयों को उतना ही रसायन विज्ञान आता है जितना अंग्रेजों ने उन्हें सिखाया है तो प्रफुल्लचन्द्र विचलित हो गए। प्रफुल्लचन्द्र ने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर प्राचीन भारत में काम में लाई जाने वाली रसायन की विधियों को खोजना प्रारम्भ कर दिया। फ्रान्सीसी वैज्ञानिक बर्थेलोट की पुस्तक ग्रीक अलकेमी से उन्हें प्रोत्साहन मिला। प्रफुल्लचन्द्र ने संस्कृत, पाली, बंगाली आदि के ग्रन्थों से रसायन सम्बन्धी जानकरी जुटाई। बर्थेलोट ने प्रफुल्लचन्द्र को प्राचीन भारत में हुए रसायन कार्य को हिन्दू रसायन विज्ञान के नाम से प्रकाशित करने को कहा। 15 वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद 1902 में हिन्दू रसायन विज्ञान पुस्तक प्रकाश में आई। पुस्तक का द्वितीय भाग 1906 में प्रकाशित हुआ। भारतीय विज्ञान–इतिहास के इस प्रमुख दस्तावेज में प्रफुल्लचन्द्र ने पश्चिम जगत् को बताया कि जब यूरोप के लोगों ने कपड़ा पहनना नहीं सीखा था तब भारत के लोग इस्पात व मरकरी सल्फाइड जैसे लवण बनाने में माहिर थे।

राजा राममोहन राय से प्रभावित होकर प्रफुल्लचन्द्र इंग्लैण्ड में चोगा व

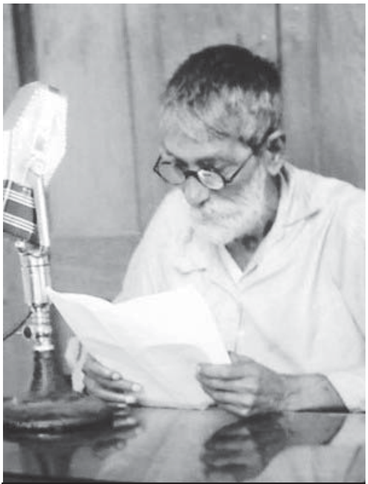

प्रफुल्ल चन्द्र राय

अचकन पहने लगे थे। भारतीय वेषभूषा पहनकर उन्हें भारतीय होने का गर्व अनुभव होता था। एडिनबरा में पढ़ते हुए प्रफुल्ल चन्द्र ने एक निबन्ध प्रतियोगिता में अंग्रेजी सरकार की कटु आलोचना की थी। सर्वश्रेष्ठ रचना होते हुए भी प्रफुल्ल को पुरस्कार के लिए नहीं चुना गया मगर प्रिन्सिपल जॉनमूर ने मुक्त कंठ से प्रफुल्ल की प्रशंसा की थी। एक प्रमुख समाचार पत्र ने लेख को प्रकाशित किया था। भारत लौट कर प्रफुल्लचन्द्र ने कहा कि देश का विकास औद्योगिकीकरण से ही संभव है। आर्थिक कठिनाइयाँ होने पर भी प्रफुल्लचन्द्र राय ने 'दी बेंगाल केमीकल एण्ड फार्मास्यूटीकल वर्क्स' नामक उद्योग लगाकर देश को विकास की दिशा दी थी। युवकों को क्लर्की के स्थान उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित किया। राष्ट्रीयता के कारण ही देश की टीम के साथ करोड़ों देशवासियों की ताकत जुड़ जाती है। राष्ट्रीयता के भाव के कारण ही भगतसिंह हँसते हुये फाँसी पर चढ़ जाते है।

**भारतीय विज्ञान**

आज भी देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो भारत के इतिहास को जाने बिना ही देश को पोंगापंथी साबित करने से बाज नहीं आते। ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि विज्ञान शब्द का प्रयोग करने वाला भारत दुनिया का प्रथम देश है। विज्ञान शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद विज्ञान को सच जानने का माध्यम बताता है। अमरकोष में विज्ञान की परिभाषा मिलती है।

महान् वैज्ञानिक आइन्सटीन ने अंकों की खोज के लिए भारत का आभार जताया है। आइन्सटीन का कहना है कि गणित के बिना विज्ञान कुछ भी नहीं कर पाता। आज भारतीय इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि सम्पूर्ण विश्व में भारतीय अंकों का प्रयोग किया जाता है। भाषा का आविष्कार भारत में होने के पक्के प्रमाण मिले हैं। पितृ: से फादर व मातृ: से मदर शब्द की उत्पति स्पष्ट दिखाई देती है। विद्वानों ने सिद्ध कर दिखाया है कि वन, टू, थ्री........ आदि शब्दों का मूल संस्कृत में है। वैज्ञानिक विधि की खोज भारत में ईसा से 6ठी शताब्दी पूर्व अक्षपाद गौतम ने न्यायदर्शन में की थी। आयुर्वेद में खोज हेतु इस विधि का उपयोग किया जाता था। गुरुत्वाकर्षण व ग्रहों की गति का ज्ञान भारतीयों को अतिप्राचीन काल से था। पाई को परिभाषित करने तथा दशमलव के बाद चार स्थान तक पाई का मान सबसे पहले भारत में निकाला गया था। कणाद ने पीलव: पीलव: पीलव: कह कर सबसे पहले यह बताया कि विश्व में जो कुछ है वह परमाणु है। परमाणु के अतिरिक्त कुछ नहीं। आज रिचार्ड फेयमान जैसे विश्व विख्यात भौतिकविद् उसी एक वाक्य को विज्ञान का सार बता रहे हैं। ऐसे अनेक उदाहरण है जो सिद्ध करते हैं कि भारत अतिप्राचीन काल से ही विज्ञान के पथ पर चलता रहा है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत में किसी वैज्ञानिक को प्रताड़ित नहीं किया गया जबकि यूरोप ने

गेलिलियों के साथ जो व्यवहार किया, सारी दुनिया जानती है।

**विज्ञान की चकाचौंध**

यह सच है कि आज विज्ञान का बोलबाला है। यह भी सच है कि मानव जीवन को सुगम बनाने में जो उपकरण काम आ रहे हैं वे पश्चिम में खोजे गए हैं। विज्ञान पढ़ते समय बच्चों को लगता है कि भारत ने कुछ नहीं किया। इसका कारण यह भारत का विज्ञान पाठ्यक्रम विदेशी आधार पर बना है। हमें यह देखना होगा कि विज्ञान की जिन उपलब्धियों को आज इतना महत्त्व दिया जा रहा है वे सभी भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ है। भारत में विज्ञान अध्यात्म से अलग नहीं रहा। शिक्षा की भारतीय पाठयचर्या में अध्यात्म (विद्या) व विज्ञान (अविद्या) को बराबर महत्त्व दिया जाता था। भारत ने बहुत पहले ही जान लिया था कि अतिभौतिकता भविष्य के लिए अच्छी नहीं है। इस कारण उसने भौतिकता का मार्ग छोड़ अध्यात्म का मार्ग अपनाया उसी से सर्वकालीन सुखदायी गीता जैसा ग्रन्थ निकल कर आया। सर्वे भवन्तु सुखिनः जैसा विश्व बंधुत्व का मंत्र निकल कर आया।

**भौतिकता और विनाश**

आज यह सिद्ध हो गया है कि भारतीय सोच ही सही थी। भौतिकता ने मानव को सुविधाएँ तो प्रदान की मगर उसका सुख छीन लिया। स्टीफन हॉकिन्स जैसे घोर भौतिकतावादि कह रहे हैं कि 100 वर्षों के भीतर, अपना अस्तित्व बचाने के लिए, मानव को पृथ्वी ग्रह छोड़ अन्य ग्रह पर बसना होगा। गहराई से देखें तो पृथ्वी ग्रह की इस स्थिति का जिम्मेदार, बेलगाम भौतिक विकास ही है। यदि सम्यक उपभोग के भारतीय सोच को अपनाया गया होता तो पर्यावरण परिवर्तन का संकट मानवता के सामने उपस्थित ही नहीं होता। भारत के जन जन में फैली परम्पराएँ पर्यावरण की रक्षक रही हैं। देववन के रूप में वनों का संरक्षण इसका उदाहरण है। आधुनिक विज्ञान ने उसे रूढ़ि कहकर वनों को नाश करने में भूमिका निभाई है। प्रकृति संरक्षण में आत्मा सो परमात्मा, कण कण में भगवान जैसी भारतीय सोच को पर्यावरण-विज्ञान मान चुका है, मगर बहुत देर के बाद। दुःख की बात यह कि भौतिकता का तथाकथित सुख पैसों वालों ने उठाया मगर बुरे परिणामों की मार निर्धन लोग झेल रहे हैं। भौतिक विकास के कारण हुए अतिमशीनीकरण ने आर्थिक विषमता को बहुत बढ़ा दिया है। इससे उत्पन्न असन्तोष कभी भी विश्व को लील सकता है। अतः भारतीय दर्शन की अनुरूपता के द्वारा विकास की अवधारणा को पुनः परिभाषित करना चाहिए।

राष्ट्रीयता के भाव को नकारने की नहीं, आज उसे उभारने की आवश्यता है। भारत माता की आराधना को पोंगा पंथी नहीं बता कर राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न करने का एक आविष्कार मानने की आवश्यकता है। अध्यात्म को अपनाए बिना उसकी आलोचना बिना प्रयोग के परिणाम देना है। राष्ट्रीयता का भाव उभरने पर ही हम भ्रष्टचार, गरीबी, प्रदूषण जैसे समस्याओं से निपट सकेंगे, केवल कानून बनाने से कार्य नहीं होने वाला। राष्ट्रीयता की भावना से ही देश को ऐसा नेतृत्व मिलेगा जो, सर्वजन हिताय कार्य कर, सच्चा समाजवाद ला सकेगा। ❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

## भारतीय शिक्षा ग्रन्थमाला के पाँच ग्रन्थों का विमोचन

पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित भारतीय शिक्षा माला के पाँच ग्रन्थों का लोकार्पण आश्विन कृष्णा तृतीया दिनांक 9 सितम्बर 2017 को दिल्ली के डॉ.श्यामा प्रसाद मुखर्जी नागरिक केन्द्र परिसर के मा. श्री केदारनाथ साहनी सभागार में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मंच पर सरसंघचालक मा. श्री मोहन भागवत, राष्ट्र सेविका समिति की पूर्व प्रमुख संचालिका प्रमिला ताई मेढ़े, पुनरुत्थान पीठ की कुलपति इंदुमति काटदरे के साथ श्री धर्मनारायण अवस्थी श्री हरिभाऊ वझे, श्री ब्रह्मदेव शर्मा भाईजी, श्री दीनानाथ बत्रा, श्री नरहरि जी, श्री शान्तनु जी शेंडे, स्वामी शिवलिंग जी भी उपस्थित थे। लोकार्पण से पूर्व सुश्री इंदुमति काटदरे ने ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया। इस अवसर पर सम्बोधित करते हुए सरसंघचालक मा. श्री मोहन भागवत ने कहा कि शिक्षा में परिवर्तन आज की मुख्य माँग है, शिक्षा पात्रता विकसित करने वाली हो। अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रमिलाताई ने कहा कि राष्ट्र का बीजबिन्दु शिक्षा में निहित होता है। विचार केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं होकर आम व्यवहार में आने चाहिए। सह संयोजक ईश्वर दयाल कंसल ने धन्यवाद ज्ञापित किया गया। इस अवसर पर देश के विभिन्न कोनों व दिल्ली से आए सैंकड़ों विद्वान उपस्थित थे।

दो दिवसीय अखिल भारतीय विद्वत गोष्ठी का आयोजन नेहरु नगर के सरस्वती विद्यालय में किया गया। विभिन्न सत्रों में पश्चिमीकरण से शिक्षा की मुक्ति तथा भारतीय शिक्षा की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु गटशः चर्चा, मुक्त चिन्तन व वैचारिक सत्र के माध्यम से गहन विचार विमर्श किया गया। अन्तिम सत्र में श्री सुरेश सोनी ने शिक्षा की दशा व दिशा पर प्रकाश डाला। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की ओर से श्री विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी, पाली (राज.), डॉ. सुरेन्द्र सोनी चूरू (राज.) डॉ. संजीव शर्मा, शिमला (हिमाचल), डॉ. वीरेन्द्र भारद्वाज दिल्ली, श्रीमती अन्जू सोनी दिल्ली, डॉ. सुषमा मिश्रा, लखनऊ (उत्तर प्रदेश), डॉ. अनीता त्यागी, बरेली (उत्तर प्रदेश) ने सहभाग किया।

क्या हम शिक्षा व्यवस्था के द्वारा शिक्षा के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों यथा पहुँच ( Access ) गुणवत्ता ( Quality ) व समानता ( Equity ) प्रतिभा प्रोत्साहन, कौशल विकास को प्राप्त करने में सफल हुए है? शोध व नवाचारों के लिए वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत अपार धन राशि का वितरण किया जाता है अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हमने कितने पेटेन्ट किये ? हमारे शोधों का साइटेसन क्या है ? हम शोध, नवाचार व अधिगम में हमारा स्थान कहाँ पाते हैं ? क्या हमने ईमानदारी से शिक्षा -वित्तीय व्यवस्था के द्वारा समाज केन्द्रित व विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था को लागू करने में सफल हुए है? कही हम तंत्र अव्यवस्था ( System disorder ) को दोष देकर स्वयं की उदासीनता का ठीकरा इस अव्यवस्था पर तो नहीं फोड़ रहे हैं। क्या हम तंत्र व्यवस्था ( System order ) को सुधार नहीं सकते हैं।

# उच्च शिक्षा में वित्त व्यवस्था

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

किसी भी व्यवस्था के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति सुचारू रूप से संचालित करने पर ही लक्षित परिणाम प्राप्त होते हैं। यह अवधारणा शिक्षा व्यवस्था पर भी लागू होती है। इसी कारण सुशासन (good governance) की आवश्यकता होती है, यह एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है व शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न प्रकार से लागू होती है। परंतु सभी व्यवस्थाओं को नियमित, विधिक व योजनाबद्ध संचालन में वित्त पोषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है जिसके आधार पर कार्यों, योजनाओं, नीतियों, परिकल्पनाओं, संकल्पनाओं, गतिविधियों को उत्कृष्टता तक पहुँचाने व उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है। इसी वित्त सहायता के आधार पर हम निष्कर्ष निकालकर, मूल्यांकन व आंकलन कर सकते है। यह अवधारणा शिक्षा व्यवस्था पर भी लागू होती है। यह राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अवयव है। प्रस्तुत आलेख में विश्वविद्यालय आयोग द्वारा बारहवीं (U.G.C Guidelines, 2012-2017 www.ugc.ac.in) प्लान निर्देशिका, विशेष सहायता प्रोगाम (Special Assistance Plan,SAP) जो 1963 से प्रारम्भ किया गया व वित्त सहायता से सम्बन्धित है, का विवरण देने का प्रयास किया गया है क्योंकि अधिकतर हम वित्त के अभाव का जिक्र करते हुए थकते नहीं हैं, परंतु क्या सभी उच्चशिक्षा में कार्यरत अधिकारियों, प्राध्यापकों, नीति निर्धारकों को क्या इस बात का संज्ञान है कि अनुदान आयोग, केन्द्रीय राज्य व डीम्ड विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों, विभागों व व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न मदों मे वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती है ? अधिकतर उच्च शिक्षा में जुड़े अधिकारियों व प्राध्यापकों को इसका संज्ञान नहीं है इसी कारण कम वित्त पोषण को दोषी माना जाता है।

शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालयों को निम्न मदों में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। संसाधनों की गतिशीलता हेतु प्रोत्साहन राशि सामान्य विकास सहायता, केन्द्रीय, राज्य व डीम्ड विश्वविद्यालयों को इस मद के अंतर्गत 16 योजनाओं से जोड़ा गया है यथा यात्रा भत्ता, सेमिनार कार्यशाला, सिम्पोजियम, लघु पाठ्यक्रम, प्रकाशन के लिए सहायता, विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्ति, डे केयर केन्द्र (Day Care Centre), साहसिक स्पोर्ट, उपकरण व इसकी आधारभूत संरचना हेतु सहायता ग्रामीण, दूरस्थ, पिछड़े, सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थित विश्वविद्यालयों को विशेष सहायता, नवीन विश्वविद्यालयों को विशेष विकास ग्रांट (Rejurvenation grant) आवश्यकतानुसार सहायता व पुराने विश्वविद्यालय को ग्रांट ,उपकरणों की रखरखाव, मरम्मत (Instrumentation Maintenance Facility) सुविधा, महिला आवास हेतु, विशेष योजना के तहत सहायता, संकाय गुणवत्ता प्रोग्राम M.Phil, Ph.D हेतु सहायता समान अवसर प्रकोष्ठ सहायता, अनुसूचित जाति, जन जाति,

पिछड़ी जाति व अल्पसंख्यकों के लिए कोचिंग योजना हेतु वित्त कॅरियर व काउंसलिंग सहायता, दिव्यांग व्यक्तियों के लिए सहायता। विश्वविद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा हेतु केन्द्र स्थापित करने हेतु उत्कृष्टता के लिए सहायता, उत्कृष्ट- क्षमता विश्वविद्यालयों (College with potential excellency) को सहायता, विश्वविद्यालयों में क्षेत्र अध्ययन प्रोगाम हेतु सहायता, भारत के युग (Epoch) निर्माता सामाजिक विचारक योजना, अकादमी संकाय महाविद्यालयों (Academic Staff College) की स्थापना हेतु-वित्त, विश्वविद्यालयों के प्रबंधक संकाय हेतु सहायता, विश्वविद्यालयों के संकाय संसाधन प्रोत्साहन योजना, योग शिक्षा प्रोत्साहन व सकारात्मक स्वास्थ्य योजना, समकालीन अध्ययन हेतु राजीव गाँधी पीठ हेतु नियम व प्रक्रिया, 'संकाय रिचार्ज' (Faculty recharge) शोध शिक्षण, संसाधन संर्वधन हेतु सहायता, विशेष क्षेत्र मे उत्कृष्टता केन्द्र स्थापना हेतु ग्रांट, एक मुश्त ग्रांट, 12(B) (U.G.C Act 1956) रहित विश्वविद्यालय जो राज्य सरकार से वित्त पोषित हैं, केन्द्रीय विश्वविद्यालय हेतु M.Phil/Ph.D सुविधा, उपरोक्त वित्त सहायता विश्वविद्यालयों से संबंधित है।

इसी प्रकार महाविद्यालयों के लिए भी विभिन्न वित्तीय सहायता योजनाएँ हैं जैसे - महिला हॉस्टल निर्माण हेतु सहायता, संकाय विकास योजना, स्वायत्त महाविद्यालय, सेमीनार, कान्फ्रेंस, कार्यशाला व सिम्पोजियम में हेतु सहायता, भवन निर्माण सहायता, विकास सहायता 14 योजनाओं का सम्मिश्रण-पुराने महाविद्यालयों मे अधोसंरचना पुन: निर्माण हेतु ग्रांट, कैचअप ग्रांट, ग्रामीण, दूरस्थ सीमावर्ती, जनजाति व पर्वतीय क्षेत्र महाविद्यालय हेतु वित्त, अधिक जनजाति, अनुसूचित व अल्पसंख्यकों वाले महाविद्यालय को सहायता, क्षमता - विकास प्रोत्साहन राशि, डे केयर सेंटर सहायता, पिछड़े क्षेत्रों के महाविद्यालय को विकास सहायता, यू.जी.सी नेटवर्क संसाधन केन्द्र सहायता, समान अवसर केन्द्र, अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यकों के लिए रेमिडियल कक्षाएँ इसी वर्ग के लिए राष्ट्रीय प्राध्यापक पात्रता परीक्षा का आयोजन, रेमिडियल कक्षाएँ उपरोक्त वर्गों के छात्रों हेतु, दिव्यांग जनों के लिए योजना, कॅरियर व काउंसलिंग केन्द्र की स्थापना, उत्कृष्टता-क्षमता महाविद्यालय (College with potential excellency) को विशेष सहायता यू.जी.सी संसाधन नेटवर्क केन्द्र, सहायता शताब्दी समारोह सहायता, उपकरण रख रखाव ग्रांट, 12(b) कम सकल नामांकन व पिछड़े क्षेत्रों की महाविद्यालयों मे नये आदर्श स्नातक महाविद्यालय प्रारम्भ करने हेतु ग्रांट 12(b), रहित महाविद्यालयों को एकमुश्त सहायता देना।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों को समान रूप से निम्न बिन्दुओं पर सहायता प्रदान करता है यथा (Orientation programm) हेतु ग्रांट, महिला अध्ययन विकास ग्रांट, मूल्य परक शिक्षा व मानव अधिकार ग्रांट, संवाद केन्द्र व सम्बद्ध संकाय केन्द्र स्थापना मद, जीवनपर्यन्त अधिगम व प्रसार गतिविधियाँ हेतु ग्रांट, यू.जी.सी. व डीजिटल लाइब्रेरी मंडल ग्रांट, आंतरिक गुणवत्ता प्रकोष्ठ की (Internal Quality Assurance Cell) स्थापना व नियमित महाविद्यालयों हेतु , ई-सेवा सामाग्री विकास, खेल-विकास हेतु आधारभूत संरचना व उपकरणों हेतु सहायता, यू.जी.सी. अधिनियम 1956 के अंर्तगत 12(b) मान्य संस्थाओं को अतिरिक्त सहायता, अनुसूचित जाति व जनजाति हेतु वित्त विकास प्रकोष्ठ निर्माण हेतु वित्त, रेडियोधर्मी पदार्थ, हानिकारक रसायन व पदार्थ के संग्रहण, उपयोग निस्तारण व प्राप्त करने हेतु वित्तीय सहयोग। अनुदान आयोग विशेष सहायता प्रोग्राम, नवाचार प्रोग्राम प्रारम्भ करने हेतु व मानविकी व सामाजिक विज्ञान शोध हेतु सहायता के अंर्तगत विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों के विभागों को भी सहायता देता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, शोधरत प्राध्यापकों व शोधविद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से भी सहायता प्रदान करता है

जैसे – शोध पुरस्कार, एमरिटस सहायता, यात्रा सहायता, इंदिरा गाँधी स्नातकोत्तर छात्रवृत्ति एकल छात्रा हेतु सहायता, स्नातक व स्नातकोत्तर प्रवीणता धारक छात्रों को रूपान्तरित छात्रवृत्ति, प्रावीण्य सूची के आधार पर विज्ञान शोधवृत्ति, विज्ञान अभियांत्रिकी व चिकित्सा क्षेत्र में डॉ. डी.एस कोठारी पोस्ट डॉक्टरेट सहायता, डॉ. रामकृष्णन स्नातकोत्तर सहायता (PDF), मानविकी व सामाजिक विषयों में, लघु व वृहद शोध परियोजना सहायता, क्षमता–विकास हेतु महिला प्रबन्धकों को सहायता, विद्यार्थियों हेतु राजीव गाँधी राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, अनुदान आयोग द्वारा चिन्हित विज्ञान अकादमी के सदस्यों को विशेष, मानदेय, अतिथि व अंशकालिक व्याख्याताओं की नियुक्ति हेतु दिशा निर्देश, प्रोत्साहन योजना–शिक्षक संकाय विषय आधारित संगठन जो शोध व अकादमी गतिविधियों से जुड़े हो उन्हें ग्रांट, सामाजिक विज्ञान व मानविकी अधिगम व शोध हेतु ग्रांट, विदेशी विद्यार्थियों हेतु छात्रवृति, अभियांत्रिकी व तकनीकी में कनिष्ठ छात्रवृति, विज्ञान, मानविकी व सामाजिक विषयों मे कनिष्ठ छात्रवृति, महिला शोद्यार्थी हेतु पोस्ट डॉक्टरेट छात्रवृति, उपरोक्त सभी यू.जी.सी. के शिक्षा व्यवस्था के वित्त के सम्पोषण, वितरण, प्रचार गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा व शोध–नवाचारों से जुड़ा एक महत्त्वाकाँक्षी प्रयास है। उच्च अध्ययन केन्द्र , विशेष विभागीय सहायता व विभागीय शोध सहायता परन्तु यक्ष प्रश्न यह उठता है कि कितनी संस्थाएँ उपरोक्त विभिन्न वित्तीय सहायता मदों की सदस्यता हेतु आवेदन करती हैं ? कितनों को सहायता प्राप्त होती है ? उसके क्या सार्थक परिणाम सामने आते है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के गठन के इतने वर्षो से उपर्युक्त मदों मे वित्तीय सहायता देने का प्रयास किया जा रहा है। परंतु क्या, जो विचार लेकर उपरोक्त योजनाओं के अंर्तगत वित्तीय सहायता का प्रावधान रखा, उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने में कितनी सफल हुई है? यह यक्ष प्रश्न है, क्या हम शिक्षा व्यवस्था के द्वारा शिक्षा के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों यथा पहुँच (Access) गुणवत्ता (Quality) व समानता (Equity) प्रतिभा प्रोत्साहन, कौशल विकास को प्राप्त करने में सफल हुए है? शोध व नवाचारों के लिए वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत अपार धन राशि का वितरण किया जाता है अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हमने कितने पेटेन्ट किये? हमारे शोधों का साइटेसन क्या है ? हम शोध, नवाचार व अधिगम में हमारा स्थान कहाँ पाते हैं ? क्या हमने ईमानदारी से शिक्षा –वित्तीय व्यवस्था के द्वारा समाज केन्द्रित व विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था को लागू करने में सफल हुए है? कही हम तंत्र अव्यवस्था (System disorder) को दोष देकर स्वयं की उदासीनता का ठीकरा इस अव्यवस्था पर तो नहीं फोड़ रहे हैं। क्या हम तंत्र व्यवस्था (System order) को सुधार नहीं सकते हैं। उच्च शिक्षा के अखिल भारतीय सर्वेक्षण यह मानव संसाधन मंत्रालय के अधीन है (AISHE,2015-2016) कि रिपोर्ट के अनुसार देश के 45 विश्वविद्यालय इस सर्वेक्षण हेतु विभिन्न आँकड़े समय पर इसकी वेबसाइट पर उपलब्ध नहीं कराते सबसे अधिक विश्वविद्यालय (14) राजस्थान से है। उल्लेखनीय है कि यह संस्था देश की उच्च शिक्षण संस्थाओं से आँकड़े एकत्रित कर केन्द्र सरकार को प्रेषित करती है इसी के आधार पर विभिन्न कार्ययोजनाएँ बनती है। जब संस्थाएँ ही आँकड़े समय पर उपलब्ध नहीं कराती फिर हम दोष किसे दें? यही उदासीनता हमारी कार्य के प्रति समर्पण को प्रदर्शित करती है। यदि हम तंत्र व्यवस्था को सुधार कर सभी उद्देश्यों का निष्ठापूर्वक पालन कर वित्तीय सहायता परियोजनाओं के निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु भगीरथ प्रयास कर, भीष्म प्रतिज्ञा को शैक्षिक जीवन में उतारकर व शिक्षा के पावन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयास करेंगे तभी शिक्षा वित्तीय व्यवस्था के द्वारा शिक्षा के सुंदर वृक्ष का निर्माण होगा व हम पुन: विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आयेंगे। ❑

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग,
सरगुजा वि.वि., अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

## 'भारत के समक्ष चीन की चुनौति' विषयक व्याख्यान

''चीन के आक्रामक आर्थिक दुष्चक्र के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष में युवा वर्ग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चीन निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार एवं इस हेतु 'सोशल मीडिया' का सोद्देश्य उपयोग राष्ट्रहित में युवा करें।'' यह विचार लेखक, चिंतक और शिक्षाविद श्री हनुमान सिंह राठौड़ ने राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में 'भारत के समक्ष चीन की चुनौती' विषय पर आयोजित व्याख्यान में प्रकट किए।

युवा विकास केन्द्र एवं रुक्टा (राष्ट्रीय) के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित इस व्याख्यान में श्री हनुमान सिंह ने चीन के साथ भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं रणनीतिक संबंधों की गहन व्याख्या करते हुए बताया कि 1949 की कम्यूनिस्ट क्रांति के बाद से ही चीन ने तिब्बत पर अपनी आक्रामक रणनीति प्रारंभ की। भारत के तात्कालिक नेतृत्व की 'सद्गुणविकृति' ने चीन को लगातार भारत पर हावी होने का अवसर दिया। वर्तमान विश्व को व्यापार केन्द्रित व्यवस्था बताते हुए भारत–चीन व्यापार में लगभग 22 अरब डॉलर का देश को घाटा तथा चीन की सस्ती लागत से निर्मित औसत गुणवत्तापूर्ण माल की वजह से भारत के छोटे उद्योगों पर गहरा असर पड़ा है, श्री सिंह ने बताया।

इस कठिन चुनौती का उत्तर देने के लिए श्री हनुमान सिंह ने युवाओं का आह्वान किया कि उन्हें सोशल मीडिया द्वारा भारत का समर्थन एवं चीन का विरोध दर्ज कराना चाहिए। दैनिक उपयोग में चीन निर्मित वस्तुओं का सम्पूर्ण रूप में बहिष्कार करना चाहिए। भारत की सांस्कृतिक–सामाजिक सक्षमता को पुष्ट करना चाहिए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. एस.के. देव ने की। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में उन्होंने विद्यार्थियों को राष्ट्रहित सर्वोपरि रखने एवं वैचारिक परिष्कार करने का आह्वान किया। संचालन युवा विकास केन्द्र के संयोजक डॉ. अनिल दाधीच ने किया। रुक्टा (रा.) से सम्बद्ध अनेक पदाधिकारियों एवं व्याख्याताओं सहित बड़ी संख्या में छात्रों ने व्याख्यान में उपस्थित रहे।

**स्वावलंबी बनने हेतु शिक्षा प्रथम पायदान है क्योंकि बिना अक्षर ज्ञान के जीवन की विकटताएँ और बढ़ जाती हैं और इसीलिए 'सर्वशिक्षा अभियान' जैसी योजनाओं के माध्यम से समस्त भारत को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। देश का प्रत्येक बच्चा, भावी निर्माणकर्त्ता है फिर चाहे वह किसी भी प्रकार की विकलांगता का शिकार क्यों न हो। विशेष बच्चों को भी आम बच्चों की तरह शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है पर क्या इन बच्चों के लिए रास्ते इतने सहज हैं जितने कि आम बच्चों के लिए होते हैं? ऐसे बच्चों को दया नहीं अपितु सामाजिक एवं सरकारी दोनों स्तरों पर गहरी संवेदनशीलता की आवश्यकता है जो उनमें आत्मसम्मान जाग्रत कर सके।**

# शिक्षित भारत में हो अवसर की समानता

❑ **डॉ. ऋतु सारस्वत**

यह एक सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से ही नहीं है बल्कि चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करने वाला औजार भी है। शिक्षा को एक मापक या पैमाने के तौर पर देखा जाता है जिसके आधार पर व्यक्ति, राज्य या देश का मूल्यांकन किया जाता है और यदि इस मूल्यांकन के दृष्टिकोण से हम 'भारत' में साक्षरता की स्थिति को देखें तो वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। पुरुषों की साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत है एवं महिलाओं की 65.46 प्रतिशत। पर इन आँकड़ों से परे, शिक्षित भारत के अधूरे स्वप्न की वे कड़ियाँ भी हैं जिनके संबंध में गहन विचार और विमर्श की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने वर्ष 2000 में तय किया था कि शिक्षा 'मानवाधिकार' है, हर व्यक्ति को जीवन में विकास के समान अवसर मिलने चाहिए। उनके साथ सामाजिक पृष्ठभूमि, लिंग, धर्म या उम्र के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। पर क्या वाकई ऐसा होता है? इस प्रश्न का उत्तर जानना नितांत आवश्यक है और यह भी जानना महत्त्वपूर्ण है कि क्यों हर व्यक्ति के लिए शिक्षा जरूरी है? यूनेस्को की एक रिपोर्ट के मुताबिक, ''विश्व के विकास की कार्य सूची में सभी विषयों जैसे निर्धनता उन्मूलन, स्वास्थ्य संरक्षण, तकनीकी जानकारी का आदान-प्रदान, पर्यावरण का रक्षण, लिंग-भेद समापन, प्रजातान्त्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करना तथा शासन-प्रशासन में सुधार, सब के लिए न्याय सुलभता, शिक्षा के माध्यम से इन विषयों को एकात्मक भाव से देखा जाना चाहिए।'' स्पष्ट है कि शिक्षित व्यक्ति ही स्वयं को और देश को एक सकारात्मक दिशा दे सकता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के तहत सामने आया और 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। देश में शिक्षा का स्तर ऊपर उठाने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए। 6 से 14 साल के बच्चों के निःशुल्क शिक्षा का कानून इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, लेकिन लक्ष्य अभी भी दूर है। देशभर में करीब 2 करोड़ 'विशेष' बच्चे हैं, जिनमें से एक

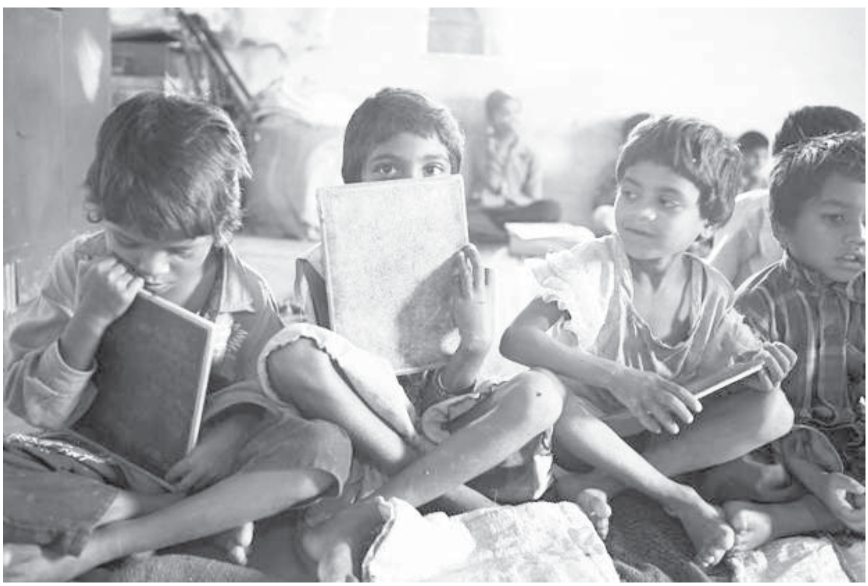

प्रतिशत से भी कम बच्चे सरकारी और निजी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। इसके साथ ही विशेष बच्चों को जरूरत के मुताबिक घर बैठे शिक्षा पूरी करने का विकल्प भी इस विधेयक का भाग रहा हैं बच्चों के नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा संशोधन विधेयक में मानव संसाधन मन्त्री ने यह स्पष्ट किया कि कई तरह की विकलांगता झेल रहे बच्चों के लिए घर बैठे शिक्षा की व्यवस्था की जा सकेगी।

स्वावलंबी बनने हेतु शिक्षा प्रथम पायदान है क्योंकि बिना अक्षर ज्ञान के जीवन की विकटताएँ और बढ़ जाती हैं और इसीलिए 'सर्वशिक्षा अभियान' जैसी योजनाओं के माध्यम से समस्त भारत को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। देश का प्रत्येक बच्चा, भावी निर्माणकर्ता है फिर चाहे वह किसी भी प्रकार की विकलांगता का शिकार क्यों न हो। विशेष बच्चों को भी आम बच्चों की तरह शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है पर क्या इन बच्चों के लिए रास्ते इतने सहज हैं जितने कि आम बच्चों के लिए होते हैं? 1995 में विकलांग (समान अवसर अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम का विधियम हुआ जो 1996 में लागू किया गया। इस अधिनियम में विकलांगजनों के प्रति समाज के उत्तरदायित्व को निर्धारित किया गया जिससे समाज से यह अपेक्षा की गई कि वह विकलांग व्यक्तियों के साथ समायोजन करे। परन्तु आज भी विकलांग बच्चों के लिए बनी समस्त योजनाएँ सिवाए कागजी किले से ज्यादा कुछ साबित नहीं हुई हैं, क्योंकि ऐसी शिक्षण संस्थाओं की संख्या नाममात्र की हैं जहाँ विकलांग बच्चों की बुद्धि के स्तर को नापने की सुविधाएँ उपलब्ध हों और हैं भी तो कुछ बड़े शहरों में। देश में ऐसे स्कूलों को ढूँढ़ना रेत में सूई ढूँढ़ने जैसा है जहाँ विकलांग बच्चों की शिक्षा हेतु समस्त साधन हैं। भारत के सरकारी एवं निजी शिक्षा संस्थाओं में ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई है जो मन्दबुद्धि बच्चों को उनके स्तर तक आकर पढ़ा सके। जो विकलांग बच्चों को पढ़ा सके, ऐसे शिक्षकों के अभाव में क्या यह संभव है कि ये बच्चे मुख्यधारा से जुड़े स्कूलों में पढ़ सकें? समस्या यहीं समाप्त नहीं होती। भारत में ऐसे बच्चों की संख्या भी बहुत है जो पोलियो या किसी अस्थि रोग से पीड़ित हैं, अथवा दृष्टिबाधित या मूक-बधिर हैं। उनकी सुविधा के लिए आम स्कूलों से लेकर देश के प्रतिष्ठित विद्यालयों में रैंप की सुविधाओं का अभाव है जिसके चलते वे बच्चे जो व्हील चेयर या बैसाखी प्रयोग में लेते हैं, इस स्कूलों में जाने से कतराते हैं।

एक ओर जहाँ विशेष बच्चों के शिक्षण का मुद्दा गंभीर विषय बना हुआ है वहीं दूसरी ओर स्कूल के भवन और प्रशासनिक व्यवस्था, विशेष बच्चों के अनुकूल बन सके यह एक चुनौती बनी हुई है। इस दिशा में सीबीएसई ने स्कूलों को सुनिश्चित करने के लिए कहा है कि शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों के लिए स्कूलों में होस्टल, पुस्तकालय, लैब और इमारतों को अवरोधमुक्त बनाएँ। वहीं बोलने वाली पुस्तकें, पढ़ने वाली मशीन और स्पीच सॉफ्टवेयर के साथ कम्प्यूटर स्कूलों में उपलब्ध कराया जाए। साथ ही स्कूलों को सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे बच्चों को मुख्यधारा वाले स्कूलों में दाखिले से मना नहीं किया जाए। सीबीएसई ने सभी स्कूलों को निर्देशित करते हुए, यह स्पष्ट किया कि ऐसे बच्चों के लिए स्कूलों में रैम्प शौचालय, व्हील चेयर लिफ्ट और ऐलीवेटर में चिह्न का इस्तेमाल जरूर करें। स्कूलों में बच्चों को सुविधाएँ उपलब्ध न कराये जाने के कारण बच्चों को उपेक्षित महसूस होना पड़ता है। यदि विकलांगता से ग्रसित बच्चों की सहायता करनी है तो उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना चाहिए। ऐसे बच्चों को दया नहीं अपितु सामाजिक एवं सरकारी दोनों स्तरों पर गहरी संवेदनशीलता की आवश्यकता है जो उनमें आत्मसम्मान जाग्रत कर सके। शिक्षा न केवल साक्षरता प्रदान करती है अपितु 'स्व' को भी जाग्रत करती है और यही 'स्व' व्यक्तित्व निर्माण का मूल है। समाज के हर व्यक्ति को यह समझना होगा कि ईश्वर किसी को भी पूर्णतया रिक्त करके नहीं भेजता और विकलांग बच्चों के भी गहरी प्रतिभाएँ छुपी होती हैं। सरकारी स्तर पर भी ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है, जिससे विकलांग बच्चे मुख्यधारा में जुड़ सकें, अन्यथा शिक्षित भारत का स्वप्न अधूरा ही रहेगा।

यह एक निर्विवादित सत्य है कि देश में व्याप्त इन असमानताओं को एक पल में दूर नहीं किया जा सकता। परन्तु हमें यह स्वीकारना ही होगा कि अगर संपूर्ण भारत को शिक्षित करना हो तो उन तमाम बाधाओं को दूर करने के प्रयास करने ही होंगे जिससे देश को कोई भी बच्चा शिक्षा के अधिकार से वंचित न रहे इसके लिए ऐसी नीतियों का निर्माण करना होगा जो विशेषकर बालिकाओं, दलित छात्रों और विशेष छात्रों के लिए ही हों और इसमें सामाजिक सेवा संस्थाओं की भागीदारिता अपरिहार्य होगी जो कि क्षेत्र विशेष की बाधाओं को समझती हो और उनके निराकरण में सहयोग कर सकें। किसी भी विशेष उद्देश्य पूर्ति के लिए भगीरथ प्रयासों की आवश्यकता होती है और जब देश को शिक्षित करने का प्रश्न हो तो यकीनन जन जागृति और सरकारी नीति का सही ढंग से क्रियान्वयन अपनी महती भूमिका निभाएगा। ❑

(व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, पुष्कर)

# भारतीय शिक्षा और राष्ट्रवाद

❑ **डॉ. संजीव कुमार**

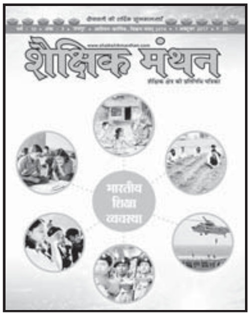


**राष्ट्रवाद एक जटिल, बहुआयामी अवधारणा है जिसमें आम तौर पर संस्कृति, भाषा, धर्म, राजनैतिक लक्ष्य और अपनी सभ्यता में, आस्था और परम्पराओं में विश्वास होता है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनके संगठन को मजबूत और सुदृढ़ करती है। लेकिन बदलती पृष्ठभूमि और शिक्षा व्यवस्था के कारण राष्ट्रवाद का स्वरुप भी बदलता नजर आ रहा है। आज शैक्षिक संस्थानों में संस्कृति और सभ्यता के नाम पर जो हो रहा है वह हमारी वास्तविक संस्कृति पर अघात है- चाहे वह 'Cultural Evening' जैसे कार्यक्रम हों या देश विरोध की संस्कृति से जुड़े आयोजन। इन सब से हमारी युवा पीढ़ी का मन, दिमाग और शैक्षिक संस्थानों का वातावरण गम्भीर रूप से प्रभावित हो रहा है। शिक्षा व्यवस्था में समुचित बदलाव लाने के लिए हमें शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों पर प्राचीन और आधुनिक के सन्दर्भ में अध्ययन करना होगा।**

सभ्यता और संस्कृति मनुष्य के जीवन के आधार हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने वैदिक काल से ही सदैव विश्व का मार्गदर्शन किया है। वर्तमान समय में भी शिक्षाविद् इसी बात का प्रयास कर रहे हैं कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था हो जिसमें बच्चों में विद्यालय काल से ही अपनी सभ्यता, संस्कृति और राष्ट्र से प्यार व लगाव की भावना पैदा हो। राष्ट्रवाद एक जटिल, बहुआयामी अवधारणा है जिसमें आम तौर पर संस्कृति, भाषा, धर्म, राजनैतिक लक्ष्य और अपनी सभ्यता में, आस्था और परम्पराओं में विश्वास होता है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनके संगठन को मजबूत और सुदृढ़ करती है। लेकिन बदलती पृष्ठभूमि और शिक्षा व्यवस्था के कारण राष्ट्रवाद का स्वरूप भी बदलता नजर आ रहा है। आज शैक्षिक संस्थानों में संस्कृति और सभ्यता के नाम पर जो हो रहा है वह हमारी वास्तविक संस्कृति पर आघात है- चाहे वह 'Cultural Evening' जैसे कार्यक्रम हों या देश विरोध की संस्कृति से जुड़े आयोजन। इन सब से हमारी युवा पीढ़ी का मन, दिमाग और शैक्षिक संस्थानों का वातावरण गम्भीर रूप से प्रभावित हो रहा है। शिक्षा व्यवस्था में समुचित बदलाव लाने के लिए हमें शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों पर प्राचीन और आधुनिक के सन्दर्भ में अध्ययन करना होगा। यह लेख भारत की प्राचीन और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में निहित उद्देश्यों को उजागर करता है ताकि आधुनिकता के दौर में भी शिक्षा भारत की गरिमा को बढ़ाने और बच्चों को सुसंस्कृत करने वाली हो। निम्नलिखित उद्देश्यों से प्राचीन कालिक और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में अन्तर पता चलता है-

मन और तन की पवित्रता और जीवन की सद्भावना-प्राचीन भारत में बच्चे के मन में पवित्रता और धार्मिक जीवन से सम्बन्धित भावनाओं को विकसित करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य हुआ करता था। बच्चे की शिक्षा उपनयन संस्कार से आरम्भ होती थी। अपने घर और माता-पिता से दूर गुरुकुल में रहकर प्रात: और सायं संध्या करते हुए ईश्वर का गुणगान करना, व्रत धारण करना, अपने त्योहारों को मनाना उसे आध्यात्मिक दृष्टि से सुदृढ़ बनती थी, लेकिन वर्तमान शिक्षा में इस तरह की कोई बात नहीं रही है और न ही यह वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य है। आज बच्चा बचपन से ही स्वार्थ, अहंकार, क्रोध और ईर्ष्या का दास बन जाता है जो उसका जीवन भर साथ नहीं छोड़ते।

चरित्र का निर्माण और शुचिता हमारे ऋषि

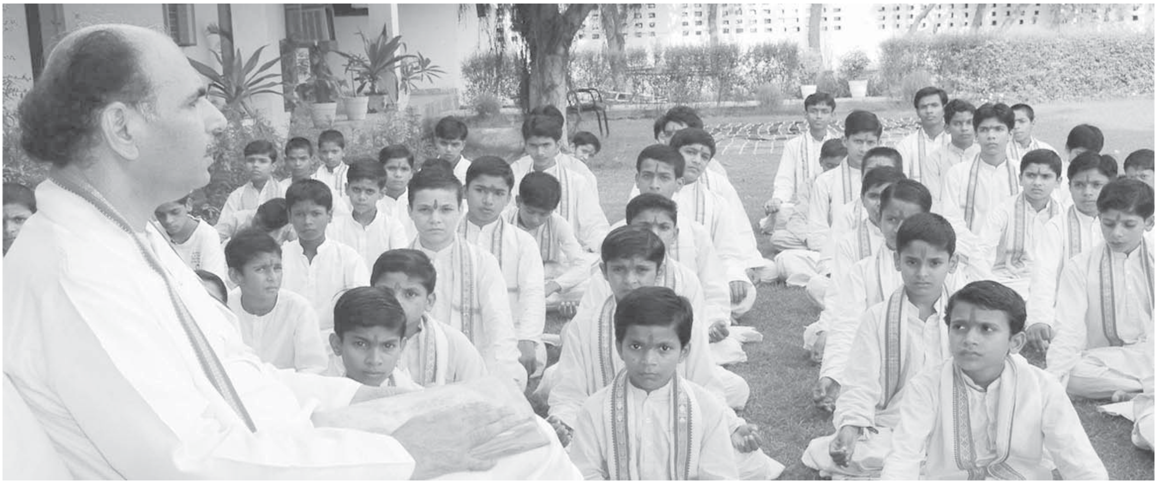

मुनियों का यह मानना था कि केवल पढ़ना-लिखना ही शिक्षा नहीं बल्कि उसमें नैतिकता का विकास कर उसका चरित्र निर्माण करना भी अति आवश्यक है। मनुस्मृति के अनुसार सदाचारी व्यक्ति को वेदों का ज्ञान भले ही कम हो परन्तु वह उस वेद पंडित से कहीं अच्छा है जिसमें चरित्र की शुचिता न हो। उस समय महापुरुषों के जीवन से बच्चों का चारित्रिक विकास किया जाता था। आज उस शिक्षक का ही चरित्र नहीं जिसने बच्चों को पढ़ाना होता है तो बच्चों का चारित्रिक विकास होना एक कड़ी चुनौती है।

सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए पुरानी शिक्षा पद्धति से बच्चे में आत्म सम्मान की भावना को विकसित करना आवश्यक समझा जाता था जिसके लिए आत्म -विश्वास, आत्म-निर्भरता, आत्म-रक्षण और आत्म-नियन्त्रण जैसे गुणों को विकसित किया जाता था। इसके अलावा विभिन्न परिस्थितियों में उचित निर्णय लेने की क्षमता, अपने विवेक का सही उपयोग करना सिखाया जाता था। वर्तमान शिक्षा केवल धन और नौकरी प्राप्त करने के लिए ही बच्चे को तैयार करती है जिसमें इन गुणों का अभाव होता है।

नागरिकता और सामाजिकता का विकास, हमारी पहले की शिक्षा व्यवस्था में इस बात पर जोर दिया जाता था कि बच्चा बड़ा होकर अच्छा नागरिक बने जो समाज के लिए उपयोगी हो। इसलिए उसे अपने माता-पिता, बन्धु-बांधवों, पत्नी, पुत्र के अतिरिक्त देश और समाज के प्रति भी अपने कर्त्तव्यों का पालन करना सिखाया जाता था। इस प्रकार वह अपने साथ-साथ समाज और देश के उत्थान के लिए भी कार्य करते थे। आज की शिक्षा ने बच्चे को पूरी तरह से स्वार्थी बना दिया है।

सामाजिक कुशलता का विकास- इसके अंतर्गत बच्चे को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं, व्यवसायों और उद्योगों में प्रशिक्षण दिया जाता था। उस समय का समाज कार्य-विभाजन वाला समाज था जिसके कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय राजा हुए और शूद्र दार्शनिक भी बने। परन्तु फिर भी सामान्य व्यक्ति के लिए अपने परिवार के व्यवसाय को अपनाना ही उचित होता था। इसी से व्यवसाय की कुशलता में वृद्धि हुई। इसी कारण हमारे समाज में आज भी व्यावसायिक कुशलता पारिवारिक है। तभी पुरानी कलाएँ और संस्कृति आज भी जीवंत हैं।

संस्कृति का संरक्षण और विस्तार राष्ट्र से सम्बधित सम्पत्ति और संस्कृति का संरक्षण करना और उसे विकसित करना उस समय की शिक्षा का उद्देश्य हुआ करता था। हिन्दुओं ने अपने विचार और संस्कृति का प्रचार करने के लिए शिक्षा को ही सबसे उत्तम साधन माना। इसलिए प्रत्येक हिन्दू अपने बच्चे को वही शिक्षा प्रदान करता था जो उसने स्वयं प्राप्त की थी। यह उस समय के आचार्यों की देन है कि आज भी वैदिक कालीन सम्पूर्ण साहित्य हमारे सामने सुरक्षित है। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीयों को उनकी संस्कृति की महानता के ज्ञान से अवगत कराया। इन्हीं अनुसंधानों के कारण भारतीयों के मन में एक नया ज्ञान और उत्साह जाग्रत किया है।

निष्कर्ष यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति इस प्रकार की थी जिसमें भारतीय जीवन और बच्चे के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास का व्यापक दृष्टिकोण निहित था। इस शिक्षा व्यवस्था से निकले बच्चे राष्ट्र प्रेमी और सहनशील होते थे। राष्ट्र हित की ही प्राथमिकता हुआ करती थी। वहीं दूसरी ओर आज की शिक्षा व्यवस्था के मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना जिसमें हस्तकला के कार्य पर बल देना है; कुशल नेतृत्त्व की शिक्षा प्रदान करना; उत्पादन में वृद्धि करना; राष्ट्रीय एकता का विकास करना; लोकतन्त्र को सुदृढ़ बनाना और देश का आधुनिकीकरण व तकनीकीकरण करना है। ❑

(टी. जी. टी. नॉन मेडिकल,
प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय, राजकीय माध्यमिक
विद्यालय, रुगडा; जिला सोलन, हि. प्र.)

# बालकों के अधिगम में अभिप्रेरणा की भूमिका

❑ डॉ. कृष्णा आचार्य

**व्य**क्ति जिसमें बालक-बालिकाएँ, महिला-पुरुष सभी आते हैं, जीवन एवं अधिगम में अभिप्रेरणा की महत्ता सर्वविदित है, निर्विवाद है। अभिप्रेरणा से व्यक्ति ऐसे कार्य कर लेता है, जिसको करने की उससे कल्पना में भी अपेक्षा नहीं की जाती है। अभिप्रेरणा से 'पंगु गिरि लंघे' की कहावत चरितार्थ हो जाती है तो हनुमान का समन्दर पार जा कर लंका में डंका बजाना तथा कृष्ण की अभिप्रेरणा द्वारा अर्जुन का महाभारत के युद्ध में सफलता प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। किसी बालक के जीवन में सफलता तथा उपलब्धि इस बात पर निर्भर है कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कितने प्रयास और श्रम करने के लिये तत्पर है। सफलता और उपलब्धियों के द्वारा उसे कितनी एवं किन स्तर की संतुष्टि प्राप्त करनी है। अभिप्रेरणा इस सफलता एवं उपलब्धियों तक पहुँचने हेतु एक अनिवार्य एवं शक्तिशाली दिशा-निर्देशक है।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। इसमें मानव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। किसी व्यक्ति के व्यवहार के लिये अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं। इनमें से कुछ कारक आन्तरिक और कुछ बाह्य होते हैं। इनकों ही मनोवैज्ञानिक प्रेरक के नाम से पुकारते हैं। ये प्रेरक ही क्रियाशीलता बनाते हैं अथवा मनुष्य को नवीन क्रियायें सीखने की प्रेरणा देते हैं। किसी निश्चित लक्ष्य के लिये क्रियाशील बनाना ही प्रेरणा है। यह रुचि को पैदा करने, बनाये रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। मनोवैज्ञानिक केवल आंतरिक प्रेरणा का अध्ययन करता है और इनको ही व्यवहार का आधार मानता है। वे प्रेरणा को एक आंतरिक शक्ति मानते हैं जो व्यक्ति को कार्य करने के लिये उत्तेजित करती है।

आज शिक्षा के माध्यम से बालक के चरित्र-निर्माण तथा व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास की आवश्यकता है परंतु वर्तमान में बालकों को सीखने के लिये विवश करना, क्रूर तरीकों को अपनाना, प्रलोभन देना आदि का शिक्षा के क्षेत्र में कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इसमें बालक के द्वारा स्वयं की इच्छा व्यक्त करना, सक्रियता एवं तत्परता प्रदर्शित करना, दिशा-निर्देशन एवं आत्मविश्वास का रास्ता चयन करना ही उचित माना गया है। नवयुवक-युवतियों द्वारा सीखना एवं उचित दिशा में विकास तभी श्रेष्ठ होता है जब वे स्वप्रेरणा से इस हेतु कार्य करते हैं, अपनी शक्तियों व प्रयासों को अधिकतम सीमा तक ले जाने के

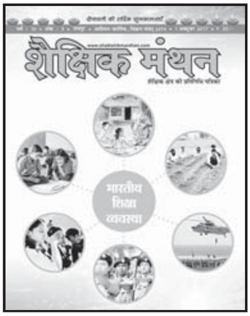


**प्रशंसा, पुरस्कार एवं अभिलाषा अभिप्रेरक है परंतु ध्यान रहे ये व्यक्ति के प्रयास के संपादन द्वारा लक्ष्य प्राप्ति तक ही रहे। ऐसा न हो कि लक्ष्य तो ओझल हो जाये अथवा गौण बन जाये और केवल प्रशंसा, पुरस्कार एवं अभिलाषा की प्राप्ति हेतु ही कार्य का संपादन हो। भय, दंड एवं भर्त्सना आदि सभी नकारात्मक अभिप्रेरक है, इनसे किसी भी प्रकार से कोई कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिलती है। इससे व्यक्ति/बालक की शक्तियों का समायोजन नहीं होता। वह शंका की स्थिति को बढ़ाता है तथा दंड, भय, भर्त्सना से बचने का ध्यान रखते हुए ही कार्य संपादित करता है। इस प्रकार उसकी रचनात्मक शक्ति भी प्रभावी होती है। लक्ष्य की प्राप्ति में व्यवधान बना रहता है, अतः इससे बचाव ही उपाय है।**

लिये तत्पर हो जाते हैं, तभी व्यक्ति एवं उसके वातावरण में गतिशिलता का संबंध स्थापित होता है।

अभिप्रेरणा प्राणी के शरीर तंत्र की चालक-शक्ति है, इसके अभाव में वह कार्य नहीं कर सकता है। बाल, किशोर, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी को अभिप्रेरणा से अपने व्यवहार में ऐच्छिक दिशा एवं गति प्राप्त होती है। अभिप्रेरणा में सभी आंतरिक अवस्थायें आ जाती है। प्राणी में क्रिया उत्पन्न करने वाले आंतरिक एवं बाह्य सभी कारक समाहित हैं, परंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से केवल उन कारकों को लिया जाता है जो अंदर से प्राणी के व्यवहार को नियंत्रित करता है। विकसित जीवों में उनकी परिवर्तनशील शारीरिक एवं मानसिक दशायें उनके व्यवहार को नियंत्रित करती है। भूख के अभाव में विभिन्न प्रकार के भोजन के सामने आने पर भी व्यक्ति उनका उपयोग नहीं करता है। अभिप्रेरणा परिवर्तनशील शारीरिक अवस्था तथा पूर्व अनुभव पर निर्भर करती है। गर्म दूध कर उसे पी जाने की प्रेरणा प्राप्त होती है लेकिन एक बार गर्म दूध से जल जाने के पश्चात् छाछ को भी एक साथ पी जाने की प्रेरणा नहीं होती। भूख होने पर उसके निवारण होने पर ही तनाव समाप्त होता है। भूख के निवारणार्थ व्यक्ति के प्रयासों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। विपक्षी पर विजय पाने की तीव्र इच्छा भी, जिसमें व्यक्ति की सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा निहित है, अपने से अधिक शक्तिशाली विपक्षी को परास्त करने में सहायक होती है। खेलों में इस प्रकार के उदाहरण खूब मिल जाते हैं।

शब्द व्युत्पत्ति विशेषज्ञों के अनुसार अभिप्रेरणा का तात्पर्य व्यक्ति को क्रियात्मकता प्रदान करना है। अभिप्रेरणा के आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ पक्ष है। आंतरिक पक्ष तनाव है जो व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को सृजित करता है, जिसका निराकरण ठीक दिशा में संपादित क्रियाओं के द्वारा होता है। वहीं बाह्य पक्ष लक्ष्य है जो वातावरण संबंधी है तथा जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है।

आवश्यकताओं से प्राणी में तनाव होता है और इस तनाव से मुक्ति पाने के लिये उसकी क्रियाशीलता का वेग कई गुना तक बढ़ जाता है। अभिप्रेरकों से व्यक्ति को ऊर्जा प्राप्त होती है, उसका व्यवहार किसी लक्ष्य की ओर दिशा प्राप्त करता है तथा उपयुक्त अनुक्रिया का निर्धारण एवं चयनकर्ता प्राप्त होता है, इससे तनाव एवं कुंठाओं का निराकरण होता है तथा व्यक्ति को संतोष तथा सुख मिलता है। अभिप्रेरणा में तीन तत्व समाहित है-ऊर्जा परिवर्तन,भावात्मक जागृति, पूर्व अनुमानित एवं प्रतिक्रिया।

पूर्व अनुमानित लक्ष्य प्राप्ति हेतु वांछित क्रिया को उत्पन्न करने में ऊर्जा परिवर्तन होती है जिसके कारण वह अपने तनावों से मुक्त होता है और संतोष की अवस्था को प्राप्त होता है। यह भी संभव है कि वह लक्ष्य प्राप्ति से चूक जाये अथवा प्राप्ति के बाद भी संतोष प्राप्त न कर सके।

एफ.जे. मेकडोनाल्ड लिखते हैं कि -''अभिप्रेरणा व्यक्ति के अंदर होने वाला शक्तिपरिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्वानुमानित उद्देश्य आधारित प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्त होता है।'' इसी संदर्भ में एच.आर.भाटिया लिखते हैं कि - ''अभिप्रेरणा सीखने वाले में समाहित किया गया ऐसा बाह्य तत्व है जो सीखने की प्रक्रिया को बनाये रखता है।'' अभिप्रेरणा प्रदान करने वाले तत्वों को अभिप्रेरक कहते हैं। ये वो जनक हैं जो जागृति देते हैं अर्थात् यह वह शक्ति है जो बालक को कार्य करने के लिये प्रेरित करती है,अंदर से जगाती है, उसके व्यवहार को दिशा प्रदान करती है तथा गति का संचालन करती है। व्यक्ति अथवा बालक को चेतना दे कर कार्य हेतु उत्तेजना प्रदान करती है। जैसे शक्कर अभिप्रेरक है तो मिठास उसकी अनुभूति है। सो प्राप्त करने की इच्छा का जाग्रत होना ही अभिप्रेरणा है।

अभिप्रेरणा उद्देश्यपूर्ण होती है। इसमें बालक या व्यक्ति का चयनात्मक व्यवहार होता है। बालक/व्यक्ति की सफलता एवं अधिगम हेतु अभिप्रेरणा आवश्यक है। अभिप्रेरणा के लिये निम्न में से किसी एक कारक का होना आवश्यक है, जैसे-पर्यावरण जन्य निर्धारण तत्व जिन्होंने व्यवहार को जगाया है। आंतरिक प्रेरणा, जिसके आधार पर व्यक्ति द्वारा क्रिया सम्पन्न की गई है। व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रेरकों के द्वारा होने वाली अभिव्यक्ति का अनुकूलन होता है, एक ही प्रेरक अनेक रूपों में व्यावहारिक अभिव्यक्ति होती है। इस पर स्थान, समय एवं वातावरण का प्रभाव भी रहता है।

अभिप्रेरकों का वर्गीकरण विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से किया है, परंतु सभी के मूल में अभिप्रेरक ही महत्त्वपूर्ण रहता है। एस.के.थामसन ने अभिप्रेरणाओं को दो वर्गों में बाँटा है- प्राकृतिक तथा कृत्रिम। कई मनोवैज्ञानिकों ने आंतरिक एवं बाह्य अभिप्रेरणा का नाम दिया है।

प्राकृतिक अभिप्रेरणा में शारीरिक आवश्यकता एवं संरचनाभूत, प्रवृत्यात्मक, भावात्मक, संवेगात्मक, सत्यापित आवश्यकतायें एवं संस्कृतिजन्य व्यक्तिगत आवश्यकतायें एवं आदत, अभिलाषा, प्रतिष्ठा एवं आत्मप्रकाशन आदि शामिल है जैसे-भूख, प्यास, विश्राम आदि कुछ क्रियायें जैसे-दिल का धड़कना, रक्त-संचार, पाचन-क्रिया आदि जो जन्मजात है। बाह्य या कृत्रिम अभिप्रेरणा जो कार्य करने के पश्चात् उपलब्धियों तथा प्रभाव से संबंधित है। इसके अंतर्गत कार्य परिणाम का ज्ञान प्राप्त होने वाला संयोग तथा सहयोग तथा उपलब्ध साधन एवं प्रभाव सम्मिलित है, इसमें दंड एवं पुरस्कार, सहयोग, मानसिकता एवं परिपक्वता आते हैं। प्राणी मनोविज्ञान के आधार पर कार्य का प्रभाव प्रेरणा के रूप में महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के जीवन में कार्य के संपादन द्वारा आनंद एवं संतुष्टि की प्राप्ति हेतु संबंधित कार्यों में संभागिता के अवसर यथा सुविधायें भी अभिप्रेरणा का कार्य करती है।

**अभिप्रेरणा का अधिगम पर एवं जीवन में महत्ता -**

व्यक्ति/बालक के जीवन में उसकी शिक्षा में अभिप्रेरणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक अभिप्रेरणा का आधार कोई लक्ष्य होता है अत: बालक/व्यक्ति को उस लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान अथवा समझ होना आवश्यक है, अभिप्रेरणा द्वारा कार्य करने की शक्ति, साहस एवं दिशा निर्धारित होती है। जब आंतरिक-शारीरिक तनाव होता है, यह सचेत कर व्यक्ति के प्रयास के द्वारा उपलब्धियों से उसे संतुष्ट एवं आनंद मिलता है।

योग्य अभिप्रेरकों का चयन एवं उनका उपयोग करना कला है, अभिप्रेरणा देने हेतु विचारपूर्ण अभिप्रेरकों का चयन ही व्यक्तिगत क्षमता, उपलब्ध साधन एवं सहयोग दे सकते हैं।

सामाजिक उपलब्धियों तथा उसके आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को स्पष्ट करना भी एक सशक्त अभिप्रेरणा सिद्ध हो सकती है। अभिप्रेरकों द्वारा व्यक्ति/बालक में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन दिखाने की इच्छा पैदा करनी चाहिये। इसमें लक्ष्य प्राप्ति के कार्य में व सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं समस्त शक्तियों के साथ प्रयास करने की शक्ति का स्पंदन अनुभव करेंगे,इस प्रयास में न्यूनता न आने दें तथा निरंतरता बनाये रखें ताकि वह लक्ष्य प्राप्ति तक उसमें संलग्न रहे और इधर-उधर चलायमान न ही उसके अवधान में व्यवधान आये।

प्रशंसा, पुरस्कार एवं अभिलाषा अभिप्रेरक है परंतु ध्यान रहे ये व्यक्ति के प्रयास के संपादन द्वारा लक्ष्य प्राप्ति तक ही रहे। ऐसा न हो कि लक्ष्य तो ओझल हो जाये अथवा गौण बन जाये और केवल प्रशंसा, पुरस्कार एवं अभिलाषा की प्राप्ति हेतु ही कार्य का संपादन हो। भय, दंड एवं भर्त्सना आदि सभी नकारात्मक अभिप्रेरक है, इनसे किसी भी प्रकार से कोई कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिलती है। इससे व्यक्ति/बालक की शक्तियों का समायोजन नहीं होता। वह शंका की स्थिति को बढ़ाता है तथा दंड, भय, भर्त्सना से बचने का ध्यान रखते हुए ही कार्य संपादित करता है। इस प्रकार उसकी रचनात्मक शक्ति भी प्रभावी होती है। लक्ष्य की प्राप्ति में व्यवधान बना रहता है, अत: इससे बचाव ही उपाय है।

अभिप्रेरणा हेतु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि बालक/व्यक्ति के सामने योग्य उदाहरण प्रस्तुत किया जायें। श्रेष्ठ महापुरुषों की जीवनियों के अंशों का उदाहरण प्रस्तुत करें।

अभिप्रेरणा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि अभिप्रेरकों के माध्यम से अभिप्रेरित व्यक्ति की आकाँक्षायें इतनी ऊँची न हो जाये कि जिन्हें प्राप्त करना ही मुश्किल हो जाये। ऐसे में तनाव, निराशा एवं भग्नाशा का ही जन्म होगा।

व्यक्ति को निरंतर प्रयासरत एवं लक्ष्योन्मुखी बनायें रखने हेतु कई बार नई एवं अधिक सशक्त अभिप्रेरणाओं को पूर्ण अभिप्रेरकों के स्थान पर प्रयुक्त करना उचित तथा उपयोगी होता है। नये अभिप्रेरकों का उपयोग करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिये। अभिप्रेरणा द्वारा व्यक्ति की कार्य करने की कार्य करने की रुचि के क्षेत्र में विस्तार व विकास होता है। रुचि अनुकुलता होने से अधिगम अधिक प्रभावी असर करता है।

अभिप्रेरणा हेतु अनेकानेक अभिप्रेरकों के उपयोग से उस व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जिसे अभिप्रेरणा दी जा रही है, सक्रिय हो कर कार्य-संलग्न हो जाये। लक्ष्य की ओर सीधी अभिप्रेरणा को उन्मुख करने के लिये विभिन्न प्रकार के विधि सम्मत अन्तर्नादों का उपयोग कर स्पष्टता, तीव्रता, प्रखरता प्रदान करने का श्रेष्ठतम प्रयास भी किया जाना चाहिये।

अभिप्रेरणा प्रदान करने वाले के लिये यह भी आवश्यक है कि वह अपना कार्य उत्साह एवं आत्मविश्वास के साथ सम्पन्न करें। उसके लिये यह भी जरूरी है कि व्यक्ति को उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करें। वह लक्ष्य-प्राप्ति की दृष्टि से उसमें आराध्य के प्रति आराधना का भाव जाग्रत करें, इसमें अधिगम के विकास के साथ उसका प्रभाव कई गुना बढ़ जायेगा।

अभिप्रेरणा को संवेगों पर आधारित प्रस्तुत करना भी उपयोगी रहता है, इससे कार्य-क्षमता बढ़ जाती है, सामाजिक भावना का न्यायसंगत उपयोग भी इस दिशा में लाभकारी रहता है। व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप अभिप्रेरणायें अधिक प्रभावी होती हैं। अधिगम में श्रेष्ठता सिद्ध होने लगती है।

सारांश में स्पष्ट है कि कार्य अथवा सीखने की प्रगति का ज्ञान भी कार्य की गति अथवा सीखने की प्रक्रिया को तीव्र बनाता है, कार्य करने या सीखने वाले का उत्साहवर्धन करता है, जिससे वह अधिक उत्साह, प्रसन्नता, क्रियाशीलता का परिचय देता है। इसी कारण से नैसर्गिक अन्तर्नाद एवं प्रेरक अधिक प्रभावकारी होते हैं तथा बाह्य अथवा प्राकृतिक अन्तर्नाद एवं इतने अधिक प्रभावी नहीं होते हैं।

अस्तु! सीखने के लिये अभिप्रेरणा देने वाले का नकारात्मक एवं हतोत्साहित करने वाली प्रक्रियाओं जैसे-चिंता, संशय, शर्म, आक्रोश, संदेह, विफलता आदि की अभिव्यक्ति उचित नहीं है, आलोचना को भी संयमित भाषा में और प्रसन्न मुद्रा में ही व्यक्त करना चाहिये, जिससे सामने वाले में हीन भावना का विकास नहीं हो तथा लक्ष्योन्मुख होने के स्थान पर लक्ष्यविमुख न होने पाये। अधिगम में अभिप्रेरणा आवश्यक एवं उपयोगी सिद्ध होती है। विकास का मार्ग खुलता है और अधिगम क्षमता का विकास होता है। अभिप्रेरणा व्यक्ति/बालक के व्यवहार को परिष्कृत, नियंत्रित, रूपातंरित, पथप्रदर्शित तथा परिचालित करती है। उच्च कक्षाओं के बालकों के अधिगम गतिशील बनाने के लिये कृत्रिम अभिप्रेरणाओं का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है। आवश्यकता के अनुरूप ही अभिप्रेरणा का प्रयोग करना लाभदायक रहता है। ❑

**किसी स्थान या नगर का नाम देखते -देखते किस प्रकार बदल जाता है इसका एक उदाहरण तो है हमारा पवित्र और प्रसिद्ध तीर्थस्थान 'ऋषिकेश'। हरिद्वार के पास का यह पावन इलाका आज ऋषिकेश नाम से प्रसिद्ध है किन्तु हमें भलीभाँति याद है हमारे बचपन में अर्थात् बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक इसका यह नाम कभी नहीं बोला या लिखा गया। ऋषिकेश का अर्थ है ऋषि के बाल। हमारे यहाँ ऋषियों के बाल कभी नहीं नोंचे जाते। मूलतः इस तीर्थस्थल का नाम था 'हृषिकेश' जो भगवान् श्रीकृष्ण का नाम है और गीता में कई बार आता है। इसका अर्थ है 'इन्द्रियों का विजेता'। श्रीकृष्ण के नाम पर ही इस इलाके को हृषीकेश नाम सुप्रसिद्ध था। वही लिखा , बोला और छापा जाता था।**

# चलन ने बदल दिए शब्द और अर्थ

❑ **देवर्षि कलानाथ शास्त्री**

चलन या लोक व्यवहार किसी भी शब्द के रूप या अर्थ को किस प्रकार पूरा बदल सकता है इस कटु सत्य को तो भाषा विज्ञान भी मानता है, पुराना संस्कृत व्याकरण भी। इसके कुछ नमूने अत्यन्त रुचिर हैं। किसी स्थान या नगर का नाम देखते -देखते किस प्रकार बदल जाता है इसका एक उदाहरण तो है हमारा पवित्र और प्रसिद्ध तीर्थस्थान 'ऋषिकेश'। हरिद्वार के पास का यह पावन इलाका आज ऋषिकेश नाम से प्रसिद्ध है किन्तु हमें भलीभाँति याद है हमारे बचपन में अर्थात् बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक इसका यह नाम कभी नहीं बोला या लिखा गया। ऋषिकेश का अर्थ है ऋषि के बाल। हमारे यहाँ ऋषियों के बाल कभी नहीं नोंचे जाते। मूलतः इस तीर्थस्थल का नाम था 'हृषिकेश' जो भगवान् श्रीकृष्ण का नाम है और गीता में कई बार आता है। इसका अर्थ है 'इन्द्रियों का विजेता'। श्रीकृष्ण के नाम पर ही इस इलाके को हृषीकेश नाम सुप्रसिद्ध था। वही लिखा, बोला और छापा जाता था।

हृषिकेश का लिखना थोड़ा कठिन लगा होगा अतः न जाने किस घड़ी यह नाम बदल कर 'ऋषिकेश' हो गया। अब इसे कोई गलत बताए तो वह पागल समझा जा सकता है क्योंकि अब तो बड़ी-बड़ी धार्मिक पत्रिकाएँ भी (जैसे कल्याण मासिक पत्र) इसे ऋषिकेश कहने लगी हैं जो कुछ दशक पहले तक कभी नहीं कहती थीं।

**विनय क्या नम्रता है ?**

संस्कृत भाषा में स्वयं भी अनेक अर्थ चलन ने ऐसे बदल दिए हैं कि आज उनका वास्तविक अर्थ नदारद हो गया। आपने 'विनय शब्द सुना ही होगा।' 'विद्या ददाति विनयम्।' इसका अर्थ आज शत-प्रतिशत समझा जाता हैं विद्या से व्यक्ति विनीत होता है अर्थात विनय का अर्थ है नम्रता। विनय का यह अर्थ मूलतः कभी नहीं था। प्राचीन शास्त्रों में, ग्रन्थों में, काव्यों में विनय का ठीक वही अर्थ है जो आज 'अनुशासन' का है। विद्या व्यक्ति को अनुशासन सिखाती है। जैन और बौद्ध वाङ्मय में भी विनय का यह अर्थ स्पष्ट है।'विनयपिटक' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसका नम्रता से कोई संबंध नहीं है, वह पतियों के अनुशासन का विधान करता है। कालिदास ने 'रघुवंश' में राजा दिलीप का वर्णन किया है कि दिलीप ने समस्त देश में विनय अर्थात् अनुशासन स्थापित कर दिया था। 'प्रजानां विनयाधानात्' (रघुवंश /24)। यहाँ प्रजा को नम्र बनाने का कोई प्रसंग नहीं है। कालिदास ने तो जगह-जगह अनुशासन के लिए विनय शब्द का प्रयोग किया है।'विद्या ददाति विनयम्' लिखे जाने तक विनय को अनुशासन ही माना जाता था। न जाने कब किसने विनय को नम्रता का अर्थ दे दिया ताकि 'विनीत व्यक्ति ' का अर्थ नम्र व्यक्ति माना जाने लगा। आज इसे गलत बताने वाले को पागल समझे जाने का खतरा बना हुआ है।

**आमंत्रण चल निकला**

ऐसा ही एक जोड़ा है शब्दों का 'आमन्त्रण' और 'निमन्त्रण'। किसी कार्य के लिए किसी को न्यौता दिए जाने के लिए इन शब्दों का प्रयोग होता है। दोनों में क्या भेद है? पाणिनी ने अपने व्याकरण के एक सूत्र में इनका उल्लेख किया है 'विधिनिमन्त्रणा' आदि (3/3/161) निमन्त्रण और आमन्त्रण के अर्थों में क्या अन्तर है? इस पर व्याकरणकारों ने यह अर्थ बतलाया कि न्यौता देना तो होता है 'निमन्त्रण'। किसी को कार्यविशेष के लिए बुलाना, न्यौतना।'आमन्त्रण' आता है सबको किसी समारोह या स्थान पर पहुँचने की सूचना देना। इसे आजकल अंग्रेजी भाषा के 'कॉल' शब्द से समझाया जा सकता है। किसी जुलूस या प्रदर्शन में शामिल होने के लिए 'कॉमन कॉल' राजनेता दिया ही करते हैं, वही है आमन्त्रण। प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ 'सिद्धान्त कौमुदी' के लेखक भट्टोजि दीक्षित स्पष्ट ही कह देते हैं- 'आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा।' अर्थात् आमन्त्रण का अर्थ है

इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता– 'आप को बुलाया गया है, आएँ, न भी आएँ।'

आजकल तो आमंत्रण शब्द ही सर्वत्र प्रयुक्त होता है । उसका अर्थ यदि यह लिया जाए कि 'चाहे तो आएँ अन्यथा नहीं' तो आमंत्रण करने वाला नाराज हो जाएगा। निमंत्रण का ही अर्थ है कार्यविशेष के लिए व्यक्ति विशेष को न्यौतना किन्तु आजकल निमंत्रण शब्द का प्रयोग नहीं होता। वह तभी होता है जब किसी को भोजन के लिए न्यौता जाए। देखिए चलन ने 'निमंत्रण' को केवल 'जीमण' के लिए न्यौता देने का अर्थ है दिया है जो डेढ दो सौ वर्ष पहले (भट्टोजि दीक्षित के समय तक) नहीं था।

भाषाशास्त्री यह स्पष्ट करते रहते हैं कि शब्दों में अर्थ की संक्रांति चलन के कारण होती रहती है। यह अर्थ परिवर्तन कभी अर्थ विस्तार कर देता है तो कभी अर्थसंकोच।

**श्रद्धांजलि : अर्थसंकोच का उदाहरण**

कभी-कभी चलन के कारण कुछ शब्दों का 'अर्थसंकोच' भी हो जाता है। भाषा विज्ञान में अर्थसंकोच का तात्पर्य होता है किसी विशिष्ट संदर्भ के कारण केवल एक ही भाव की अभिव्यक्ति के लिए उस शब्द का प्रयोग होने लग जाना। इसका एक उदाहरण है 'श्रद्धांजलि'। इसका शाब्दिक अर्थ तो होगा विनम्रता के साथ श्रद्धा की अभिव्यक्ति करना जो चाहे आप किसी देवता के लिए, अपने गुरु के लिए करें या अपने बड़े परिवारजनों के लिए करें। जिन्हें आप श्रद्धांजलि दे रहे हैं वे जीवित भी हो सकते हैं, दिवंगत भी। दिवंगत वरिष्ठों का स्मरण करके आप उन्हें स्मरणांजलि देते भी हैं, किन्तु चलन के कारण 'श्रद्धांजलि' शब्द रूढ़ हो गया है, दिवंगत व्यक्ति का स्मरण कर उसके प्रति आदर की अभिव्यक्ति के अर्थ में। दिवाली के दूसरे दिन 'रामा श्यामा' करने हेतु वरिष्ठ व्यक्तियों को घर जाकर उन्हें आदर देने का रिवाज सारे उत्तर भारत में है, किन्तु यदि आप कभी यह कह दें कि मैं आज अपने विभागाध्यक्ष को श्रद्धांजलि देने जा रहा हूँ तो विभागाध्यक्ष भी रुष्ट हो जाएगा और सुनने वाले भी यही अर्थ लगाएँगे कि विभागाध्यक्ष का निधन हो गया होगा, अत: यह उन्हें उनके चित्र पर पुष्प चढ़ाकर श्रद्धांजलि देने जा रहा है। इस प्रकार यह शब्द केवल दिवगंत व्यक्ति के प्रति श्रद्धा तक सीमित अर्थ वाला शब्द बनकर रह गया है। हमें तो यह भी डर लगने लगा है कि श्रद्धा शब्द के साथ कुछ वाक्यों में अन्य शब्द भी यदि लगाया जाए तो वह केवल दिवगंत व्यक्ति तक ही सीमित न मान लिया जाए। उदाहरणार्थ, 'श्रद्धा सुमन अर्पित करना'। श्रद्धा के पुष्प आप देवमूर्ति पर चढाते ही हैं किन्तु आजकल मीडिया में दिवगंत व्यक्ति के चित्र पर फूल चढाकर शोकाभिव्यक्त करने को 'श्रद्धा सुमन अर्पित करने' के रूप में इतना वर्णित किया जाने लगा है कि श्रद्धासुमन चढाना भी केवल दिवंगतों के संदर्भ तक सीमित रहकर अर्थसंकोच का एक अन्य उदाहरण बन जाएगा ऐसा लग रहा है। ये कुछ नमूने हैं चलन के द्वारा शब्दों के अर्थ उलट - पलटकर दिए जाने के। इस प्रकार के शब्दों पर प्रबुद्ध पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आज के भाषाशास्त्रियों का कर्तव्य है।

(राष्ट्रपति सम्मानित, प्रधानसम्पादक 'भारती' संस्कृत मासिक)

# राँची विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ की इकाई का पुनर्गठन

डोरंडा महाविद्यालय के विज्ञान भवन में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ से संबद्ध इकाई राँची विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ की महत्त्वपूर्ण बैठक 10 सितम्बर 2017 को आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता डॉ. पूनम सहाय ने किया ।

बैठक में विगत सत्र (2014-17) के सभी पदाधिकारी उपस्थित रहे। इकाई के राँची विश्वविद्यालय के महामंत्री डॉ. ब्रजेश कुमार ने शैक्षिक संघ द्वारा विगत वर्षों में किए गए कार्यक्रमों का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। बैठक को कोल्हान विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. विजय प्रकाश, नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. बृज कुमार मिश्रा, विनोबा भावे विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. गोखुल नारायण दास, डॉ. राजकुमार चौबे, डॉ. ज्योति प्रकाश, डॉ. नीरज, डॉ. बागेश्वर वर्मा, डॉ. राजकुमार आदि ने संबोधित किया।

पुरानी इकाई को विधिवत भंग कर राँची विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ के नये सत्र (2017-2020) की नयी कार्यकारिणी की घोषणा चुनाव पर्यवेक्षक डॉ. विजय प्रकाश ने की जो इस प्रकार है - अध्यक्ष - डॉ. अशोक कुमार चौधरी, निदेशक, एच.आर.डी.सी., उपाध्यक्ष -डॉ. बिनोद नारायण, डॉ. पूनम सहाय, डॉ. राजकुमार शर्मा, डॉ. सुनीता कुमारी गुप्ता, डॉ. मनोज कुमार, डॉ. के.के. पोद्दार, डॉ. निर्मला प्रसाद, महामंत्री - डॉ. शशि कुमार गुप्ता, मंत्री -डॉ. नम्रता सिन्हा, डॉ. सुनीता कुमारी, डॉ. मीरा कुमारी, डॉ. राजकुमार सिंह, डॉ. मिथिलेश कुमार, डॉ. सोनी तिवारी, डॉ. प्रशांत गौरव, डॉ. कपिलदेव प्रसाद, कोषाध्यक्ष -डॉ. बैद्यनाथ कुमार, सह मीडिया प्रभारी-डॉ. अभिषेक गुप्ता, विशेष आमंत्रित सदस्य -डॉ. सुशील अंकन, डॉ. ब्रजेश कुमार, डॉ. ज्योति प्रकाश, डॉ. पूनम कुमारी, डॉ. सुखी उरॉव, डॉ. वागेश कुमार वर्मा सहित 21 कार्यकारिणी सदस्य निर्वाचित किए गए।

नवनिर्वाचित अध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार चौधरी ने अपने संबोधन में कहा कि मुझे जो जिम्मेदारी संघ ने दी है उसे सामूहिक रूप से समस्याओं के सामाधान हेतु ईमानदारी से निभाने का प्रयास करूँगा। उन्होंने आगामी 3 माह की कार्ययोजना बनाने पर जोर दिया।

कार्यक्रम का संचालन निवर्तमान महामंत्री डॉ. ब्रजेश कुमार ने किया एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. सुनीता कुमारी ने किया।

# फाईबर ऑप्टिक्स अनुसंधानी नरेन्द्रसिंह कपानी

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

**सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी केवल वैज्ञानिक ही नहीं है। कपानी अपनी खोजों का लाभ जन-जन तक पहुँचाने के लिए उनके उत्पादन में पहल करने में भी माहिर है। आविष्कार करने तथा उसके व्यापारिक उत्पादन हेतु प्रौद्योगिकी विकसित करने के साथ उसको बेचने में भी सरदार नरेन्द्रसिंह माहिर है। ऑप्टिक तकनीकी इनकोरपोरेशन बनाकर ऑप्टिक फाइबर पर आधारित यन्त्रों का उत्पादन प्रारम्भ करने का श्रेय कपानी को जाता है। एक सफल व्यापारी के रूप में कपानी कई कम्पनियों के प्रमुख रहे हैं। सरदार नरेन्द्रसिंह की सक्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है 82 वर्ष की उम्र में सौर उर्जा के क्षेत्र में पेटेन्ट प्राप्त किया था।**

**नो**बल पुरस्कार देने में भारतीयों के साथ कई बार अन्याय हुआ है। महात्मा गाँधी, जगदीशचन्द बोस, उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी, भारत रत्न सी.एन.आर. राव, जैव अणुओं के अध्येयता जी.एन.रामचन्द्रन आदि नोबल समिति से उपेक्षित रहे भारतीयों की सूची में एक नाम प्रवासी भारतीय सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी का भी है। नोबल समिति ने चार्ल्स के. काओ को फाइबर ऑप्टिक्स के क्षेत्र में यह बताने के लिए सम्मानित किया कि प्रकाश किस तरह काँच के रेशे में लम्बी दूरी तय कर पाता है? काओ को सम्मानित करने में हमें कोई परेशानी नहीं है, दुःख तो इस बात का है कि काँच-फाइबर की कल्पना करने, सबसे पहले उसे बनाने तथा मुड़े हुए काँच-फाइबर में से सबसे पहले प्रकाश को गुजारने व फाइबर ऑप्टिक्स नाम की भौतिकी की नई शाखा की नींव रखने वाले वाले सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी को नोबल समिति ने उपेक्षित रखा। 1955 से 1965 तक फाइबर ऑप्टिक्स अनुसंधान क्षेत्र में सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी का विश्व में एकाधिकार रहा था। नरेन्द्रसिंह कपानी को फाइबर ऑप्टिक्स के जनक के रूप में पहचान भी मिल चुकी थी। फोरचून मेगजीन ने नवम्बर 1999 के अंक में सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी परिचय, 20वीं शताब्दी को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले छः अन्य अल्पज्ञात व्यक्तियों के साथ प्रकाशित किया था।

कपानी के अनुसंधान के कारण ही गैस्ट्रोस्कोप, एन्डोस्कोप व ब्रोंकोस्कोप जैसे यन्त्रों का निर्माण संभव हुआ। ये सभी कार्य चार्ल्स काओ के कार्य के प्रकाश में आने के पहले के हैं। नोबल पुरस्कार पर नजर रखने वाले जानकारों का मानना है कि स्वीडिश अकादमी काओ के कार्य को महत्त्व देना चाहती थी तो उसे काओ व कपानी को संयुक्त रूप से पुरस्कार देना था। नोबल पुरस्कार समिति द्वारा की गई उपेक्षा पर, जब पत्रकारों ने, सरदार नरेन्द्रसिंह की प्रतिक्रिया जाननी चाही तो उन्होंने कहा 'मैंने जो कार्य किया वह विश्व के सामने है। नोबल समिति के निर्णय पर मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ?'

**अपनी प्रयोगशाला में कपानी**

भारत में जन्मे सरदार नरेन्द्रसिंह का जन्म 31 अक्टूबर 1926 को मोगा, भारत में हुआ था।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा देहरादून में हुई। आगरा विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि लेने के बाद कपानी ने कुछ समय तक देहरादून की ओर्डेनेन्स फैक्ट्री में काम किया। बाद में आगे अध्ययन हेतु इंपीरियल कालेज लंदन चले गए। इंपीरियल कालेज लंदन से कपानी ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

नरेन्द्र देहरादून में जब कक्षा 10 के विद्यार्थी थे तो उन्हें पढ़ाया गया कि प्रकाश सदैव सीधी रेखा में चलता है। तभी नरेन्द्र के मस्तिष्क में यह विचार आया कि प्रकाश को टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर भी चलाया जा सकता है। प्रकाश को टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर कैसे चलाया जा सकता है इसके विषय में नरेन्द्र को कुछ भी ज्ञात नहीं था। जब वे देहरादून की आयुध फैक्ट्री में कार्य कर रहे तो समकोण प्रिज्मों की सहायता से प्रकाश को टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चलाने का प्रयास किया। अधिक सफलता नहीं प्राप्त नहीं हुई मगर हार नहीं मानी। उच्च अध्ययन के लिए लंदन गए तो वहाँ भी प्रयास जारी रखा। नरेन्द्र के गुरु डॉक्टर होपकिन्स ने सुझाव दिया कि प्रिज्म के स्थान पर काँच के खोखले बेलन का उपयोग करने पर सफलता मिल सकती है। नरेन्द्र को भी लगा कि काँच के खोखले तन्तु लिए जावे तो वे आसानी से मुड़ सकेंगे और सफलता मिल सकती हैं। प्रकाश को टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर ले जाकर नरेन्द्र, बिना चीरफाड़ किए रोगी के शरीर के अन्दर झाँकने में चिकित्सकों की मदद करना चाहते थे।

## डीएससी की मानद उपाधि से नवाजे जायेंगे फाइबर ऑप्टिक्स के जनक कपानी

आज हम हाई इंटरनेट पर हर चीज के बारे में सर्फिंग करते हैं लेकिन संभव हो पाया है डॉ. नरिंदर सिंह कपानी की बदौलत। फाइबर ऑप्टिक्स के जनक माने जाने वाले डॉ. कपानी ने फाइबर-ऑप्टिक्स संचार प्रणाली, लेजर, बायोमेडिकल यंत्रीकरण, सोलर एनर्जी और प्रदूषण नियंत्रण आदि के क्षेत्र में शोध एवं अनुसंधान कार्य किया है। उनके नाम पर 100 से भी अधिक पेटेंट हैं और वह नेशनल इनवेंटर कौंसिल के सदस्य भी हैं। उन्हें यूएस पैन-एशियन अमेरिकन चैंबर ऑफ कॉमर्स द्वारा द एक्सीलेंस 2000 से नवाजा गया है। एक उद्यमी व बिजनेस एग्जिक्यूटिव के तौर पर वे प्रोसेस ऑफ इनोवेशन और मैनेजमेंट ऑफ टेक्नोलॉजी एवं टेक्नोलॉजी ट्रांसफर में विशेषज्ञता रखते हैं। 1960 में उन्होंने ऑप्टिक्स टेक्नोलॉजी इंक नाम से एक कंपनी की स्थापना की और 12 साल तक बोर्ड के चेयरमैन, प्रेजिडेंट व निदेशक भी रहे।

उन्होंने कैप्ट्रान इंक. बनायी और 1973 में बेचने तक इसके सीईओ रहे। हाल ही में उन्होंने के-2 ऑप्ट्रोनिक्स नाम से एक कंपनी स्थापित की है। पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा 25 मार्च को होने जा रहे दीक्षांत समारोह में डॉक्टरेट ऑफ साइंस (डीएससी) की मानद उपाधि से विभूषित किये जाने वाले भौतिक शास्त्री डॉ. नरिंदर सिंह कपानी पंजाब के मोगा जिले 31 अक्टूबर,1926 को पैदा हुए और पिछले 45 साल से अमेरिका में रह रहे हैं। फिलहाल डॉ. कपानी बे एरिया में अपनी पत्नी सतिंदर कौर, बेटे राजिंदर सिंह और बेटी किरण के साथ रह रहे हैं। उनका बेटा हाईटेक एग्जिक्यूटिव है तो बेटी किरण अटार्नी और फिल्म मेकर हैं।

सैद्धान्तिक रूप से बात सही लग रही थी मगर परेशानी यह थी कि प्रयोग करने हेतु काँच के पतले तन्तु उपलब्ध नहीं थे। नरेन्द्र पूर्णत: पारदर्शी काँच लेकर पिल्किन्टन काँच फैक्ट्री में गए और उसे पतले तन्तुओं में बदल देने का अनुरोध किया। फैक्ट्री वालों ने जब पूछा कि वे इन काँच के तन्तुओं का क्या करेंगे तो नरेन्द्र ने बताया कि वे इनमे से प्रकाश को प्रवाहित करेंगे। अविश्वसनीय बात सुनकर फैक्ट्री वाले मुस्करा दिए। फैक्ट्री वालों ने नरेन्द्र द्वारा दिया गया पूर्ण पारदर्शी कांच को तो एक ओर पटक दिया और उनके यहां काम में आने वाले सामान्य काँच के तन्तु बना कर नरेन्द्र को भेज दिए। स्पष्ट था कि साधारण काँच के धागों में प्रकाश अधिक दूरी तक नहीं जा सकता था। नरेन्द्र के पास कोई अन्य विकल्प नहीं था। नरेन्द्र ने काँच के धागों को छोटे टुकड़ों में बाँट कर प्रयोग किया। कुछ कठिनाइयों के बाद नरेन्द्र को सफलता प्राप्त हो गई। खोज का विवरण ब्रिटेन की विज्ञान अनुसंधान पत्रिका नेचर में 1954 में प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही विज्ञान को फाइबर ऑप्टिक्स के रूप में एक नया शब्द मिला।

**विविधतापूर्ण अनुसंधान**

भारत में बहुत कम लोग इस बात से परिचित है कि भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी को ऑप्टिक फाइबर का जनक कहा जाता है। ऑप्टिक फाइबर शब्द नरेन्द सिंह कपानी द्वारा दिया गया है। सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी का अनुसंधान क्षेत्र विविधता पूर्ण रहा है। कपानी ने ऑप्टिक फाइबर संचालन, लेसर, जीवचिकित्सकीय उपकरण, सौर ऊर्जा तथा प्रदूषण प्रबोधन आदि अनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। 100 के लगभग पेटेन्ट लिए हैं।

**उद्योगपति**

सरदार नरेन्द्रसिंह कपानी केवल वैज्ञानिक ही नहीं है। कपानी अपनी खोजों का लाभ जन-जन तक पहुँचाने के लिए उनके उत्पादन में पहल करने में भी माहिर है। आविष्कार करने तथा उसके व्यापारिक उत्पादन हेतु प्रौद्योगिकी विकसित करने के साथ उसको बेचने में भी सरदार नरेन्द्रसिंह माहिर है। ऑप्टिक तकनीकी इनकोरपोरेशन बनाकर ऑप्टिक फाइबर पर आधारित यन्त्रों का उत्पादन प्रारम्भ करने का श्रेय कपानी को जाता है। एक सफल व्यापारी के रूप में कपानी कई कम्पनियों के प्रमुख रहे हैं। सरदार नरेन्द्रसिंह की सक्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है 82 वर्ष की उम्र में सौर उर्जा के क्षेत्र में पेटेन्ट प्राप्त किया था। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इन्हें प्रवासी भारतीय के रूप में सम्मानित किया है। कपानी ने भारत में उत्पादन प्रारम्भ करने की इच्छा प्रकट की है।

**दानवीर**

एक दानदाता के रूप में डॉ. कपानी ने शिक्षा व कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सिख धर्म से संबंधित अनेक संस्थाओं के संस्थापक अध्यक्ष के रूप में डॉ. कपानी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में सिख धर्म के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भी डॉ. कपानी ने करवाई है। सेनफ्रान्सिस्को के संग्रहालय में एशियन कला की एक दीर्घा इनके धन से स्थापित की गई है। सिख कलाकृतियों के संग्रहण में डॉ. नरेन्द्रसिंह ने महारत प्राप्त की थी। एक कलाकार के रूप में 40 डायनोप्टिक्स का सृजन किया है। इनकी एकल प्रदर्शनी सेनफ्रान्सिस्को में लगाई गई है।

**शिक्षक**

शिक्षक के रूप में डॉ. कपानी ने अधिस्नातक कक्षाओं को पढ़ाने तथा अनुसंधान कार्य का प्रबोधन किया है। केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में रेजिडेन्ट प्रोफसर रहे हैं। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में भी कई पदों पर कार्य किया। देश-विदेश की सोसायटियों में व्याख्यान देने भी डॉ. कपानी जाते रहे हैं। 100 से अधिक अनुसंधान पत्र व कई पुस्तकें भी डॉ. नरेन्द्रसिंह कपानी के नाम है। डॉ. नरेन्द्रसिंह कपानी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। नरेन्द्रसिंह ने विज्ञान, आन्त्रप्रेन्योर, प्रबन्धन, अकादमिक, प्रकाशन, भाषण, कृषि, दानशीलता, संग्रहण, शिल्प, शिक्षण आदि विभिन्न क्षेत्रों उल्लेखनीय योगदान दिया है। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

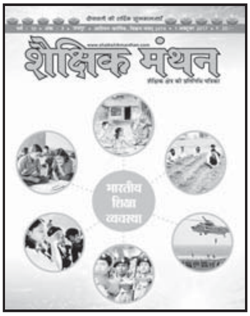


**शिक्षा केवल डिग्री देने वाली बन गई है, पात्रता विकसित नहीं करती। यही आज का सबसे बड़ा संकट है। केवल पेट पालना सिखाना ही शिक्षा को ध्येय नहीं है। आधुनिकीकरण व पश्चमीकरण में भी अन्तर करना होगा। आधुनिकीकरण के नाम पर हमारे इतिहास को नकारा गया और हमने उसे स्वीकार लिया। हमें उपयोगी को स्वीकारना है व हानिकारक को त्यागना है। खेती करना हम सिखा नहीं रहे, कम्प्यूटर सिखा रहे हैं मगर नौकरी नहीं मिल रही। बच्चा खेती के योग्य नहीं रहता और कम्प्यूटर की नौकरी उसे मिल नहीं रही। यह विड़म्बना नहीं तो क्या है। शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा दायित्व बोध नहीं करा रही, इसी कारण पढ़े लिखे लोग भी अपराध कर रहे हैं। जो समाज हितकारी के स्थान पर दुःखदायी बने तो उसे शिक्षा कैसे कह सकते हैं?**

*पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट कर्णावती (महाराष्ट्र) के द्वारा आश्विन कृष्ण तृतीया दिनांक 9 सितम्बर 2017 को दिल्ली के डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी नागरिक केन्द्र परिसर के श्री केदारनाथ साहनी सभागार में भारतीय शिक्षा ग्रन्थ माला के पाँच ग्रन्थों के विमोचन अवसर पर मा. मोहन भागवत का बीज भाषण रहा। प्रस्तुत है बीज भाषण का सारांश –*

# विद्या ददाति विनयम्

आज की शिक्षा आधी अधूरी है, इस कारण वर्तमान में सभी लोग इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा में परिवर्तन होने चाहिए, परिवर्तन क्या व कैसे हो यह विचार विमर्श से ही जाना जा सकता है। युवकों में कोई विकृति सामने आने पर उसका कारण आजकल शिक्षा को ठहरा दिया जाता है, मगर अधिकांश लोग सुधार के प्रयास में भागीदारी नहीं निभाते। सभी कहते हैं कि शिक्षा मातृभाषा में ही अच्छी होती है, परन्तु अपने बच्चे को मातृभाषा में शिक्षा दिलाने को आगे नहीं आते। आज भारतीय समाज में संचार माध्यमों के प्रति भूमिका बहुत बढ़ गई है, इन माध्यमों के प्रति अपने दायित्व को समझ कर व्यवहार करना चाहिए। माननीय बालगंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव की परम्परा का प्रारम्भ समाज में जनचेतना उत्पन्न करने के लिए किया था। आज गणेशोत्सव का रूप विकृत होता जा रहा है।

**स्कूल ही शिक्षा का पर्याय नहीं**

स्कूल को शिक्षा का पर्याय माना जाता है जबकि सम्पूर्ण जीवन की तुलना में स्कूल में बिताया समय बहुत कम होता है। घर व समाज भी शिक्षा में भूमिका निभाते हैं, आवश्यकता इनकी भूमिका को उचित स्वरूप देने की है। स्वतन्त्रता पूर्व के भारत में अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली से शिक्षित होकर महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानंद, आचार्य रवीन्द्रनाथ आदि ने स्वतन्त्रता संग्राम का पोषण करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। इसका कारण यह रहा कि उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव अपनी आत्मा पर नहीं होने दिया। वे अंग्रेजी शिक्षा पाकर भी भारत माता के पुत्र बने रहे। हमें यह समझना होगा कि बच्चे केवल ग्रन्थ से ही नहीं सीखे अन्य साधनों पर भी ध्यान दें। शिक्षा केवल स्कूल तक ही सीमित नहीं है, माँ व अभिभावक प्रथम गुरु हैं, घर में नियम व अनुशासन सिखाने होंगे। सप्ताह में एक दिन संस्कार सिखाने को देना होगा।

**मातृभाषा में हो अध्ययन**

भारतीय मान्यता है कि जीवन एक यात्रा है। ऐसे में हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि हम कहाँ से आए हैं जाना कहाँ है? आज कहाँ है और आगे किस ओर जाएँगे? इसके व्यावहारिक उपाय करने होंगे। देश की शिक्षा में सुधार के कई उपाय हो रहे हैं मगर वे पर्याप्त नहीं हैं, सभी को मिलकर कार्य करना होगा। शिक्षा में सुधार की बात करते हुए हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे यहाँ जो है वही सबसे अच्छा है। अन्य देशों में भी व्यावहारिक ज्ञान के क्षेत्र में हमसे भी अच्छा कार्य किया है। अच्छी बातें बाहर से लेने में हमें बिल्कुल संकोच नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण बाहरी ज्ञान तिरस्कार योग्य नहीं है परन्तु बाहरी ज्ञान को अपनाने से पूर्व हमें उसका विवेकपूर्ण अवलोकन करना होगा। हमारे लिए श्रेष्ठ को लेने में कोई हानि नहीं है, मगर बाहरी ज्ञान ही श्रेष्ठ है इस भावना को छोड़ना होगा। शिक्षा के क्षेत्र में फिनलैण्ड ने अच्छा कार्य किया है। वहाँ बच्चे को किताबी सूचनाओं से नहीं लाद कर व्यावहारिक ज्ञान से जीवन्त परिचय कराया जाता है। बड़ी बड़ी सैद्धान्तिक बातें नहीं बता कर भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है। बच्चे को कक्षा कक्ष तक सीमित नहीं रख कर समाज के मध्य ले जाकर अवलोकन करना सिखाया जाता है। फिनलैण्ड की शिक्षा हमारी गुरुकुल प्रणाली के अधिक समीप जान पड़ती है। सभी स्तर व सभी क्षेत्रों में मातृभाषा में अध्ययन की उत्तम व्यवस्था होनी ही चाहिए।

मैकाले पूर्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था का मजाक बनाया जाता था अब उसके महत्त्व को स्वीकारने लगे हैं। भूतकाल के सन्दर्भ में भविष्य को देखने वाला व्यक्ति ही सफल हो सकता है। भारतीय मान्यता है कि मनुष्य का जीवन एक जन्म के साथ पूरा नहीं होता। मनुष्य व पशु में यह बड़ा अन्तर है। पशुओं का जीवन मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। विचारने व सोचने की क्षमता के कारण ही मनुष्य पशु से अलग होता है। मनुष्य को प्रेय व श्रेय में अन्तर करना आना चाहिए। श्रेय को पहचानने के लिए सही शिक्षा की आवश्यकता होती है। देश की परम्परा के अनुरूप शिक्षा ही सही शिक्षा हो सकती है। इसी से भारतीय समाज का पुनरुत्थान संभव है। भारतीय

शिक्षा को त्याज्य नहीं मान कर बाहरी ज्ञान के साथ इसका विवेकपूर्ण उपयोग करना चाहिए। पश्चिम में डार्विन के सर्वोत्तम की उत्तरजीविता पर अधिक महत्त्व दिया है पर भारत में चार पुरुषार्थों को निभाने पर जोर दिया गया है। भारत में विद्या व अविद्या दोनों का समान महत्त्व दिया गया है। इसका अर्थ यह कि जीवनयापन के साथ-साथ अध्यात्म की शिक्षा को आवश्यक माना गया है। वर्तमान में जीवनयापन पर पूरा जोर है, इसी कारण पर्यावरण का शोषण हो रहा है। पर्यावरण परिवर्तन मानव सभ्यता को लीलने लगा है। भारतीय मान्यता है की मनुष्य के कई जीवन होते हैं, हमें इस जीवन को ही नहीं भावी जीवन को भी संवारना है। ऐसी सोच होने पर व्यक्ति भौतिकता की दौड़ में नहीं पड़ता। पर्यावरण से सन्तुलन बना कर चलता है। ऐसे में पर्यावरण परिवर्तन व प्रदूषण जैसी समस्याएं जन्म नहीं लेतीं। धर्म के मध्यम मार्ग पर चलना ही सफलता का मार्ग है। चिन्तन के साथ प्रयोग भी आज की आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि इन ग्रन्थों में जो लिखा वही अन्तिम सत्य है। ये कुछ दिशा ज्ञान कराने में सहायक होंगे। एक बात हमें ठीक तरह समझ लेनी चाहिए कि भारतीय आत्मा को विकसित करने वाली शिक्षा से ही भारत का उत्थान संभव है। किसी की नकल करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। हम भूतकाल मे नहीं लौट सकते अत: आवश्यक प्राचीन ज्ञान को वर्तमान के अनुकूल बना कर ही व्यवहार में लाना होगा।

**विद्या ददाति विनयम्**

शिक्षा केवल डिग्री देने वाली बन गई है, पात्रता विकसित नहीं करती। यही आज का सबसे बड़ा संकट है। केवल पेट पालना सिखाना ही शिक्षा को ध्येय नहीं है। आधुनिकीकरण व पश्चमीकरण में भी अन्तर करना होगा। आधुनिकीकरण के नाम पर हमारे इतिहास को नकारा गया और हमने उसे स्वीकार लिया। हमें उपयोगी को स्वीकारना है व हानिकारक को त्यागना है। खेती करना हम सिखा नहीं रहे, कम्प्यूटर सिखा रहे हैं मगर नौकरी नहीं मिल रही। बच्चा खेती के योग्य नहीं रहता और कम्प्यूटर की नौकरी उसे मिल नहीं रही। यह विड़म्बना नहीं तो क्या है। शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा दायित्व बोध नहीं करा रही, इसी कारण पढ़े लिखे लोग भी अपराध कर रहे हैं। जो समाज हितकारी के स्थान पर दु:खदायी बने तो उसे शिक्षा कैसे कह सकते हैं? देश बचा है तो इसका कारण कि बहुत लोग अभी भी मूल्यों को सम्भाल कर चल रहे हैं। विभिन्नता में एकता रखना हमें आता है, मत भिन्नता होने पर भी हमें साथ चलना होगा। भारत में कहते हैं कि विद्या ददाति विनयम्, पश्चमी शिक्षा अहंकार पैदा करती है। शिक्षा लक्ष्य की ओर ले जाने वाली हो, आत्महीनता से काम नहीं चलेगा। सम्पूर्ण अस्तित्व की एकता पर शिक्षा को खड़ा करना होगा।

गूगल गुरु पर निर्भर होने से कार्य नहीं चलेगा। गूगल गुरु ज्ञान नहीं देकर केवल सूचना देता है। सूचना का उपयोग बिना ज्ञान के करने पर अनर्थ हो सकता है। गूगल की जानकारी चन्द्रमा को निर्जीव पिण्ड बताती है, बच्चों का प्यारा चन्दा मामा नहीं बताती। चन्दा मामा को देखने का आनन्द तो ज्ञान से ही संभव है। पाठ्यचर्या सत्यनिष्ठा पर आधारित होनी चाहिए तथा जनसहभागिता से तय की जानी चाहिए। आप सभी विद्वान, चिन्तन कर देशहित में निष्कर्ष निकालेंगे ऐसी आशा है।❑

(प्रस्तुति- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी)

# विद्यालयीन शिक्षकों की समस्याओं को लेकर देशभर में दिये ज्ञापन

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने सम्पूर्ण देश के सम्बद्ध संगठनों द्वारा 18 सितम्बर 2017 को विद्यालयीन शिक्षा एवं शिक्षकों की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए जिला कलेक्टर के माध्यम से माननीय प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, राज्यों के मुख्यमंत्री एवं शिक्षामंत्री को संगठन की ओर से माँग-पत्र प्रस्तुत कर शीघ्र समाधान के लिए निवेदन किया है। सम्पूर्ण देश के 20 राज्यों के 400 से अधिक जिलों में रैली निकालकर, प्रदर्शन कर ज्ञापन दिए गये। ज्ञापन में निम्न माँगें रखी गई -

1. छठे वेतनमान की विसंगतियों को दूर किया जाये।, 2. सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को सम्पूर्ण देश में एक समान रूप से लागू किया जाये।, 3. 1 जनवरी 2004 से पूर्व की पेंशन योजना सभी विद्यालयों में पुन: प्रारम्भ की जाये।, 4.सम्पूर्ण देश में शिक्षकों की सेवानिवृत्ति आयु एक समान 65 वर्ष की जाये।, 5. शैक्षणिक पदों पर नियमित एवं स्थायी नियुक्ति सुनिश्चित की जाये और शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुदृढ व्यवस्था हो।, 6. अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के वेतन भुगतान की कोषागार से व्यवस्था लागू हो।, 7. सभी विद्यालयों के शिक्षकों को समुचित चिकित्सा सुविधा के लिए नि:शुल्क स्वास्थ्य कार्ड की सुविधा प्रदान की जाये एवं उसका प्रभावी क्रियान्वयन हो।, 8. पदोन्नति के लिए पूर्व सेवा काल को गणना में सम्मिलित किया जाये।, 9. शिक्षा व्यवस्था के नियोजन, नियमन एवं नियंत्रण के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा शिक्षाविदों से युक्त स्वतंत्र एवं स्वायत्त नियामक शिक्षा आयोग का निर्माण हो।, 10.राष्ट्रीय अस्मिता, भारतीय जीवन मूल्यों, मानव एवं चरित्र निर्माण, सामाजिक सरोकार, मौलिक चिन्तन, शोध एवं नवाचार से युक्त सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति की पुन: संरचना की जाये।, 11. सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 10 प्रतिशत केन्द्र सरकार तथा राज्य अपने बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय सुनिश्चित करे ताकि आधारभूत सुविधाएँ जैसे शिक्षक, पुस्तकें, भवन, खेल के मैदान आदि उपलब्ध हो सके। 12. शिक्षा केडर बनाया जाये।, 13. सम्पूर्ण देश में शिक्षा की स्वायत्तता को बहाल किया जाये एवं शिक्षा सम्बन्धी सभी निर्णयों में शिक्षकों की सहभागिता सुनिश्चित की जाये तथा राजनीतिक एवं प्रशासनिक हस्तक्षेप बंद हो।, 14. नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के प्रावधानों को सुसंगत एवं व्यावहारिक बनाया जाए तथा उनकी पालना सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक संसाधन एवं सुविधाएँ प्रदान की जाये।, 15. प्राथमिक शिक्षा, मातृभाषा में ही दी जाये।, 16. शिक्षा के बाजारीकरण पर नियन्त्रण सुनिश्चित हो।, 17. विद्यार्थी मित्र, पैरा टीचर, संविदा शिक्षक, अतिथि शिक्षक, प्रबोधक, शिक्षा मित्र, अंशकालिक शिक्षक, शिक्षाकर्मी आदि नामों से कार्य करने वाले शिक्षकों को न्यूनतम वेतनमान एवं सेवाशर्तों को अविलम्ब लागू किया जाये।, 18. शिक्षकों को गैर शैक्षिक कार्यों से पूर्णतया मुक्त रखा जाये।

# शैक्षिक मंथन के 'राजस्थान में शिक्षा' विशेषांक का विमोचन

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर द्वारा सुबोध कॉलेज जयपुर के सभागार में दिनांक 6 सितम्बर, 2017 को आयोजित शैक्षिक मंथन के 'राजस्थान में शिक्षा' विशेषांक विमोचन कार्यक्रम की मुख्य अतिथि उच्च, तकनीकी एवं संस्कृत शिक्षा मंत्री श्रीमती किरण माहेश्वरी, विशिष्ट अतिथि स्कूली शिक्षा राज्य मंत्री प्रो. वासुदेव देवनानी, संस्थान के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल, सचिव महेन्द्र कपूर व शैक्षिक मंथन पत्रिका के संपादक प्रो. संतोष पांडेय ने माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया।

मुख्य अतिथि श्रीमती किरण माहेश्वरी ने कहा कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से ही युवाओं के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव है। राज्य सरकार द्वारा विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने एवं शिक्षा व्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने की दृष्टि से अनेक कार्य किए जा रहे हैं। जहाँ एक ओर महाविद्यालयों में स्मार्ट क्लासरूम, डिजिटल लाईब्रेरीज, आई.सी.टी. लैब, वाई-फाई कैम्पस और सेमीनार हाल आदि का व्यवस्था की गई है। वहीं पाठयक्रमों को भी युगानुकूल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। महाविद्यालय में योग्य शिक्षकों की नियुक्तियों की प्रक्रिया जारी है। राज्य के सभी महाविद्यालयों को नैक का निरीक्षण करवाना अनिवार्य कर दिया गया है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के विकास में सरकार द्वारा संचालित 'भामाशाह सहयोग योजना' का भी सहयोग लिया जा रहा है। महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु कॉमन प्रवेश परीक्षा का आयोजन किया जा रहा है। शिक्षक एक कर्मचारी न होकर राष्ट्र निर्माता है।

राजस्थान में उच्च शिक्षा को समृद्ध बनाने की दृष्टि से आने वाले समय में सरकार की बहुत सी योजनाएँ है। राज्य के ऐसे संस्थान जहाँ पर भी उच्च शिक्षण संस्थान पर्याप्त मात्रा में नहीं है वहाँ राजकीय शिक्षण संस्थान खोले जाने हैं।

इस अवसर पर अतिथियों द्वारा शैक्षिक मंथन पत्रिका के विशेषांक ''राजस्थान की शिक्षा'' का विमोचन किया गया।

कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि प्रो. वासुदेव देवनानी ने बताया कि सभ्यता, संस्कृति एवं मूल्यों का विकास शिक्षा से ही संभव है। सत्य और असत्य, नीति और अन्याय, समानता और विषमता तथा स्वतन्त्रता और पराधीनता में अन्तर शिक्षा से ही संभव है। शिक्षा ने समाज में अधिकार, कर्तव्य तथा परिवार और राष्ट्र के प्रति चेतना प्रदान की है। प्राचीन काल से ही शिक्षा के प्रसार को कभी राजतंत्र और लोकतंत्र की नीतियों के कारण तो कभी समाजवादी, उदारवादी, फासीवादी और अधिनायकवादी विचारधाराओं की नीतियों के चलते शिक्षा को अपना स्वरूप तय करने के लिए पाठ्यक्रम के लिए, भाषायी माध्यम के लिए, क्षेत्रीय मुद्दों के लिए और सामाजिक मुद्दों के लिए भिन्न-भिन्न मतों के चलते विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ा। राजस्थान में वर्तमान सरकार के गठन के साथ ही प्रमुख लक्ष्य शैक्षिक सुधारों का रखा, शैक्षिक उन्नयन राज्य सरकार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के प्रयासों से अभूतपूर्व प्रगति हुई है। नैतिकता, संस्कार और मूल्यों को प्रमुख स्थान देने के लिए प्रार्थना स्थलीय कार्यक्रमों में ध्यान, योग, सूर्य नमस्कार व व्यायाम आदि जोड़कर बालकों के लिए प्रार्थना सभा को रुचिपूर्ण बनाया गया। साथ ही भारत के राष्ट्रीय गौरव के प्रतीकों यथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी व पं. दीनदयाल उपाध्याय को जोड़कर बालकों को राष्ट्रीय स्वाभिमान से जोड़ा गया है।

संस्थान सचिव श्री महेन्द्र कपूर ने कहा कि देशभर में 8 लाख शिक्षक राष्ट्रभाव जगाने का कार्य कर रहे हैं। शिक्षकों का सम्मान बहुत जरूरी है। यह पत्रिका एक वैचारिक पत्रिका है, जो राष्ट्रीय विचार को आगे ले जाने का कार्य कर रही है।

कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने संस्थान की गतिविधियों पर प्रकाश डाला और के.जी. से पी.जी. तक की शिक्षा के लिए काम करने वाले संगठन अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के स्वरूप की जानकारी दी।

शैक्षिक मंथन पत्रिका के संपादक प्रो. संतोष पांडेय ने कार्यक्रम से जुड़े समस्त योजकों के प्रति आभार व्यक्त किया, कार्यक्रम का संचालन श्री भरत शर्मा द्वारा किया गया। इस अवसर पर जयपुर शहर के शिक्षाविद् एवं गणमान्य व्यक्ति मौजूद रहे।

# ब्यावर में स्वदेशी पर व्याख्यान

रुक्टा राष्ट्रीय की स्थानीय इकाई द्वारा दिनांक 26 सितम्बर, 2017 को ब्यावर स्नातक धर्म राजकीय महाविद्यालय रुक्टा राष्ट्रीय के तत्वावधान में स्वदेशी पखवाड़े के तहत चीन निर्मित वस्तुओं के बहिष्कार विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य वक्ता जिला संघचालक डॉ. क्षमाशील गुप्त ने भारतीय इतिहास के स्वर्णिम काल से औपनिवेशिक काल की तुलना करते हुए विद्यार्थी वर्ग को वर्तमान चीनी आर्थिक उपनिवेश के षड्यंत्र की आलोचना करते हुए स्वदेशी वस्तु को अपनाने पर बल दिया। डॉ. गुप्त ने बताया कि हम अपने धन से चीनी भस्मासुर को पुष्पित-पल्लवित कर रहे हैं और यह चीनी भस्मासुर हमारे ही पीछे पड़ा है। हम अपने धन से खुद लिए ही फाँसी का फन्दा बना रहे हैं। रुक्टा राष्ट्रीय के विभाग सह सचिव डॉ. एम.आर. देवड़ा ने बताया कि चीनी अर्थव्यवस्था वर्तमान में सबसे खराब दौर से गुजर रही है और चीन निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार कर हम उस पर सबसे कड़ा प्रहार कर सकते हैं। कार्यक्रम में रुक्टा राष्ट्रीय के इकाई सचिव डॉ. बृजकिशोर ने बताया कि स्वदेशी का जाग्रत होना आवश्यक है। कार्यक्रम को रुक्टा (राष्ट्रीय) के सह संगठन मंत्री राजेश शर्मा, डॉ. आशुतोष पारीक एवं धीरज पारीक ने भी सम्बोधित किया। संगोष्ठी में दक्षिण भारत के सन्त जग्गी वासुदेव का विडियो दिखाया गया जिससे सभी विद्यार्थियों से मिस्ड्कॉल दिलाया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. आर.सी. लोढ़ा ने आने वाली दीपावली पर सभी विद्यार्थियों को चीनी पटाखों का प्रयोग नहीं करने की शपथ दिलायी।

गतिविधि

# 'शिक्षा भूषण' अखिल भारतीय शिक्षक सम्मान

शिक्षा क्षेत्र व्यक्तित्व विकास का एक प्रभावशाली माध्यम होने के साथ ही राष्ट्रीय विचारों की संजीवनी के सामाजिक प्रवाह का प्रखर माध्यम है, इसलिए इसे केवल ज्ञानार्जन के क्षेत्र तक सीमित नहीं रखना चाहिए। 10 सितम्बर, 2017 को बेंगलूर, कर्नाट्क के शिक्षक सदन में आयोजित तृतीय अखिल भारतीय 'शिक्षा भूषण' शिक्षक सम्मान में उपस्थित मुख्य अतिथि मा. श्री सुरेश (भैय्याजी) जोशी, सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपना मन्तव्य रखा। उन्होंने कहा कि प्रकृति से मानव बढ़ता है, यह सहज क्रिया है, लेकिन अच्छे गुणों का वृद्धि होना है तो उसे संस्कायुक्त शिक्षा मिलना आवश्यक है। स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना शिक्षा संस्थाओं का आद्य कर्तव्य है।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में कर्नाटक के डॉ. एम. चिदानंदमूर्ति, उत्तरप्रदेश के प्रो. सतीश चंद्र मित्तल (इतिहासकार और लेखक) तथा राजस्थान के प्रो. दयानंद भार्गव (शिक्षा तज्ञ एवं लेखक) को तृतीय 'शिक्षा भूषण' सम्मान से विभूषित किया गया।

कर्नाटक राज्य माध्यमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष श्री शिवानंद सिंधनकेरा ने कार्यक्रम में उपस्थित सज्जनों का स्वागत और परिचय किया। बाद में अ.भा.रा.शै.संघ के राष्ट्रीय महामंत्री श्री जे.पी सिंघल ने संघ के ध्येयोद्देशों को सविस्तार से बताया– 'राष्ट्र के हित में शिक्षा, शिक्षा के हित में शिक्षक, शिक्षक के हित में समाज' ये सभी परस्पर एक दूसरे के हित संवर्धक सेतु हैं। भविष्य के निर्माण में इन सभी का पारस्परिक सहभाग महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कार में राष्ट्रीयता होनी चाहिए, इसलिए बच्चों को शिक्षा देते समय राष्ट्रीयता को जगाने की ओर ध्यान देना संघ के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है। शिक्षकों में निहित जीवन मूल्यों को जाग्रत करना, गुरुवंदन, कर्तव्यबोध, वर्ष प्रतिपदा जैसे कार्यक्रमों के द्वारा राष्ट्रीयता को जाग्रत करना है। पिछले तीन सालों से शैक्षिक फाउण्डेशन द्वारा शिक्षा क्षेत्र में असाधारण कार्य करते हुए, प्रचार से दूर रहे शिक्षकों को देश भर में पहचानकर उन्हें सम्मान करते हुए उनकी जीवन दृष्टि से समाज का मार्गदर्शन करना इस योजना का मूल उद्देश्य है। असाधारण शिक्षकों को पहचानते समय किसी भी प्रभाव या दबाव में न आते हुए केवल उनकी कार्यसाधना को ही महत्त्व देते हैं।

सम्मानित शिक्षक डॉ. एम.चिदानंदमूर्ति ने सम्मान स्वीकारते हुए कहा कि हिन्दू धर्म के उदात्त ध्येय, दया, दान, तप और शील के बारे में प्रस्ताव करते हुए इस तरह के उच्च संस्कारयुक्त धर्म में हमारा जन्म हुआ है, ये हमारे लिए सौभाग्य की बात है। उन्होंने कहा कि हमें राष्ट्रप्रेम से युक्त सच्चा भारतीय होना चाहिए।

शिक्षा भूषण से विभूषित प्रो. सतीश चंद्र मित्तल का अभिप्राय था कि छात्रों के आत्मसाक्षात्कार करने से ही शिक्षक विश्वगुरु बन जाता है। भारतीय शिक्षक समाज को सारे विश्व में बहुत ही गौरव से देखा जाता है। शिक्षा के बारे में अरविंद, विवेकानंद, दयानंद, श्रद्धानंदजी के विचारों को भी उन्होंने उद्घाटित किया। प्रो. दयानन्द भार्गव ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के ध्येय वाक्यांश 'राष्ट्र के हित में शिक्षा' को ऋग्वेद से अनुप्राणित बताया, साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यूं तो बहुत बार सम्मानित हुआ हूँ किन्तु यह सम्मान शिक्षकों के द्वारा एक शिक्षक का सम्मान है, जो अपने आप में विशिष्ट है। अतः मैं अत्यन्त अभिभूत हूँ।

कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल, राष्ट्रीय अध्यक्ष, अ.भा.रा.शै, महासंघ ने कहा कि शिक्षक का सम्मान करना सभी को सीखने के लिए और सिखाने के लिए प्रेरणा देने वाला यह एक अच्छा कार्यक्रम है। राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करना और शिक्षकों को अपने कर्तव्य के प्रति जाग्रत करना संगठन के प्रमुख कार्यक्रमों में एक है।

इस अवसर पर पूजनीय मंगलानाथानंद जी (रामकृष्ण मठ, बेंगलूर) ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि अध्ययन करना एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। शिक्षक राष्ट्र के चरित्र को निर्माण करने वाला है, इसलिए पहले उनका चरित्र अच्छा रहना आवश्यक है। असंस्कारयुक्त शिक्षा उपयोगी नहीं है। छात्रों में निहित प्रतिभा को बाहर लाना हर एक शिक्षक का कर्तव्य होना चाहिए।

कार्यक्रम में के. नरहरि, महेंद्रकपूर, बालकृष्णभट्ट, ओमपाल सिंह, महेंद्रकुमार, बजरंग मजेजी, मोहन पुरोहित, जे.आर. जगदीश, रामचंद्रेगौडा, बालमुकुंद के. गणेश कार्णिक, अरूण शाहपुर आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। कर्नाटक राज्य माध्यमिक शिक्षक संघ की महिला प्रमुख डी.के. ममता ने कार्यक्रम का संचालन किया। कर्नाटक राज्य महाविद्यालय संघ के श्री रघु अक्मुंची के वंदनार्पण और वंदेमातरम के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

## म.प्र. शिक्षक संघ की मुख्यमंत्री से वार्ता में बनी सहमती

म.प्र. शिक्षक संघ के प्रांताध्यक्ष लछीराम इंगले ने सम्मानीय शिवराज सिंह मुख्यमंत्री को शिक्षक दिवस की बधाई देते हुए उनके सम्मुख शिक्षकों की वर्षों से उपेक्षित व लम्बित समस्याओं पर एक 5 सूत्री माँग पत्र रखा। मुख्यमंत्री ने संघ की माँगों को बड़ी गम्भीरता से सुनकर उनके शीघ्र निस्तारण का आश्वासन दिया। वार्ता के दौरान जिन मुद्दों पर सहमति बनी वो निम्नानुसार हैं –

सहायक शिक्षक, शिक्षक, प्रधानपाठक को समयमान वेतनमान देने पर, आदिम जाति कल्याण विभाग के व्याख्याता को 8 से 10 दिन में समयमान वेतनमान का लाभ देने पर, सहायक शिक्षकों को अपग्रेडशन के लिए उसी समय मुख्य सचिव अशोक वर्णवाल को कोई भी तरकीब से इतने लम्बे समय एक ही पद पर रहने की पीड़ा दूर करने पर, अध्यापक संवर्ग का शिक्षा विभाग में संविलियन पर तथा राष्ट्रपति व राज्यपाल पुरस्कार प्राप्त शिक्षकों को पारी बाहर out of turn पदोन्नति देने पर।

इस अवसर पर प्रांताध्यक्ष लछीराम इंगले व महामन्त्री क्षत्रवीर सिंह राठौर सहित प्रतिनिधिमण्डल में प्रांतीय सचिव राजेन्द्र सिंह राजपूत, भोपाल सम्भागाध्यक्ष के.के. गौर, सागर सम्भागाध्यक्ष चन्द्रभान, राजीव शर्मा एवं राजेन्द्र गुप्ता मौजूद रहे ।